कक्षा 12

मंदाकिनी

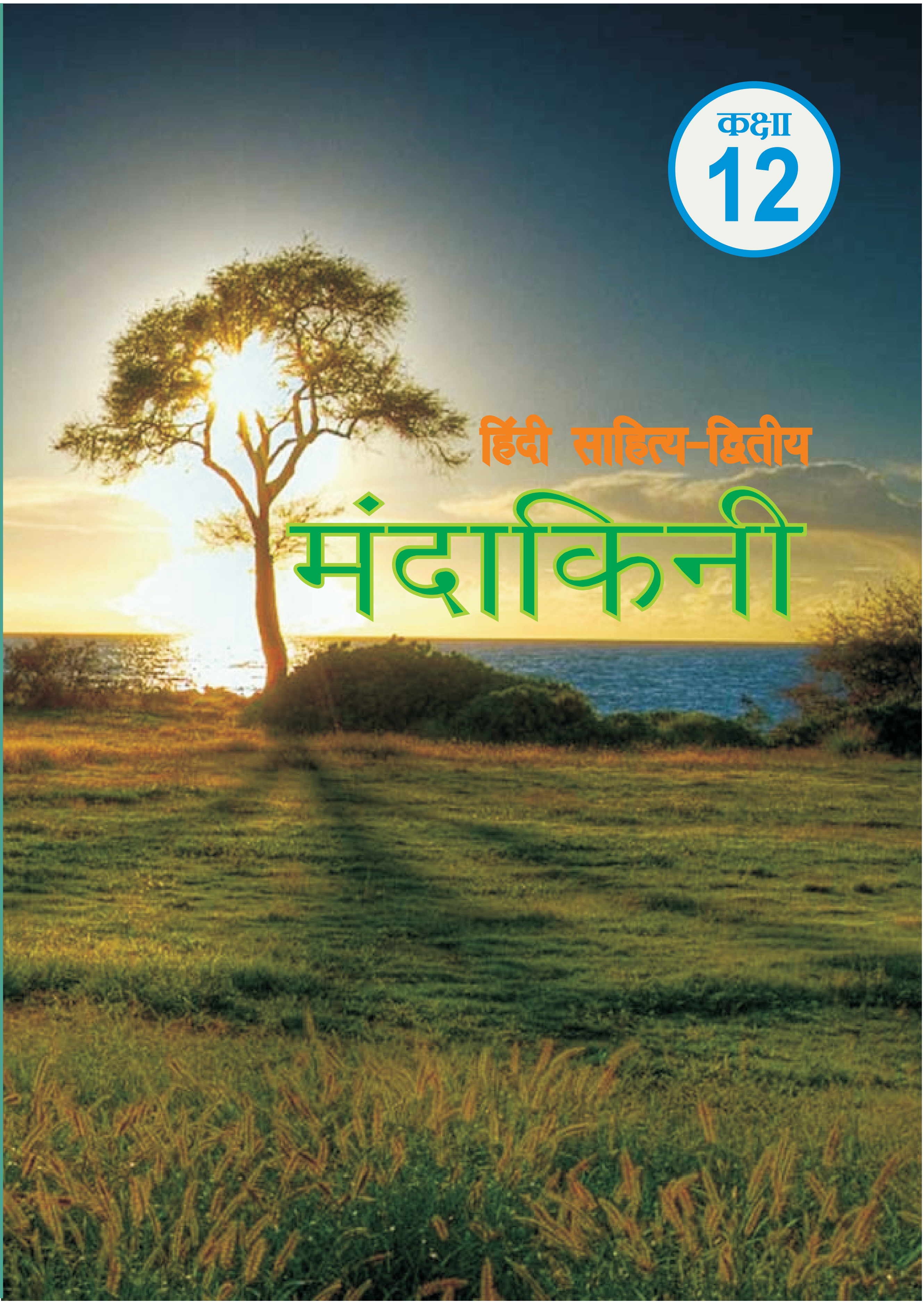

कक्षा 12

हिंदी साहित्य-द्वितीय

मंदाकिनी

मंदाकिनी

कक्षा 12 हिंदी साहित्य के लिए स्वीकृत पाठ्यपुस्तक

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक : मंदाकिनी हिंदी साहित्य

कक्षा – 12

संयोजक :– डॉ० (श्रीमती) दीपिका विजयवर्गीय
राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, चौमूँ, जयपुर

लेखकगण :–

1. डॉ० धर्मनारायण भारद्वाज, प्रधानाध्यापक
   रा. आ. उ. मा. विद्यालय, बडोली माधोसिंह
   निम्बाहेड़ा, चित्तौड़गढ़

2. राजकुमार लाटा, वरिष्ठ प्राध्यापक, हिंदी
   राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चुरू

3. श्री महेन्द्र मिश्रा
   राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
   नोहर, हनुमानगढ़

पाठ्यक्रम समिति

पुस्तक – मंदाकिनी
कक्षा–12 हिंदी साहित्य

संयोजक – डॉ. आशीष सिसोदिया, सहायक आचार्य
हिंदी विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

सदस्य –

1. डॉ. दीपिका विजयवर्गीय, व्याख्याता
   राजकीय स्नातकोत्तर महिला कॉलेज, चौमूं जिला–जयपुर

2. डॉ. नवीन नन्दवाना, सहायक आचार्य हिन्दी विभाग
   मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

3. श्री संजय कुमार शर्मा
   डाइट , हनुमानगढ़

4. श्री रमाशंकर शर्मा, व्याख्याता
   राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, धौलपुर

5. श्री अशोक कुमार शर्मा, वरिष्ठ अध्यापक
   राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, रलावता, अजमेर

6. श्री रमाशंकर शर्मा, वरिष्ठ अध्यापक
   राजकीय वरिष्ठ उपाध्याय संस्कृत विद्यालय, कुण्डगेट, सावर, अजमेर

दो शब्द

विद्यार्थी के लिए पाठ्यपुस्तक क्रमबद्ध अध्ययन, पुष्टीकरण, समीक्षा और आगामी अध्ययन का आधार होती है। विषय-वस्तु और शिक्षण-विधि की दृष्टि से विद्यालयी पाठ्यपुस्तक का स्तर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है। पाठ्यपुस्तकों को कभी जड़ या महिमामण्डित करने वाली नहीं बनने दी जानी चाहिए। पाठ्यपुस्तक आज भी शिक्षण-अधिगम-प्रक्रिया का एक अनिवार्य उपकरण बनी हुई है, जिसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते।

पिछले कुछ वर्षों में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम में राजस्थान की भाषागत एवं सांस्कृतिक स्थितियों के प्रतिनिधित्व का अभाव महसूस किया जा रहा था, इसे दृष्टिगत रखते हुए राज्य सरकार द्वारा कक्षा-9 से 12 के विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान द्वारा अपना पाठ्यक्रम लागू करने का निर्णय लिया गया है। इसी के अनुरूप बोर्ड द्वारा शिक्षण सत्र 2016-17 से कक्षा-9 व 11 तथा सत्र 2017-18 से कक्षा-10 व 12 की पाठ्यपुस्तकें बोर्ड के निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर ही तैयार कराई गई हैं। आशा है कि ये पुस्तकें विद्यार्थियों में मौलिक सोच, चिंतन एवं अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करेंगी।

प्रो. बी.एल. चौधरी
अध्यक्ष
माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

हिन्दी साहित्य
पाठ्यक्रम–कक्षा–12

समय–3:15

विषय कोड–21
पूर्णांक–80

अधिगम क्षेत्र	अंक
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	16
काव्यांग परिचय	16
पाठ्यपुस्तक –सरयू (प्रथम पुस्तक)	32
पाठ्यपुस्तक –मंदाकिनी (द्वितीय पुस्तक)	16

खण्ड–1

हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास–16 अंक
आधुनिक काल का सामान्य परिचय – (4 प्रश्न) 4X4=16 अंक

खण्ड–2

काव्यांग परिचय – 16 अंक
(क) काव्य गुण, काव्य दोष – (2 प्रश्न) 2X1=2 अंक
(ख) छंद – (गीतिका, हरिगीतिका, छप्पय, कुण्डलिया, द्रुतविलम्बित, वंशस्थ, कवित्त, सवैया)
कोई दो प्रश्न 2X3=6 अंक
(ग) अंलकार – (अन्योक्ति, समासोक्ति, विभावना, विशेषोक्ति, दृष्टांत, प्रतीप, मानवीकरण, व्यतिरेक)
कोई दो प्रश्न 2X4=8 अंक

खण्ड–3

पाठ्य पुस्तक–प्रथम पुस्तक (सरयू) – 32 अंक
(क) 1 व्याख्या गद्य से (विकल्प सहित) – 1X3=03 अंक
(ख) 1 व्याख्या पद्य से (विकल्प सहित) – 1X3=03 अंक
(ग) 2 निबंधात्मक प्रश्न (1 प्रश्न गद्य से एवं 1 प्रश्न पद्य भाग से विकल्प सहित) – 2X4=8 अंक
(घ) 4 लघूत्तरात्मक प्रश्न (2 गद्य एवं 2 पद्य भाग से) – 4X3=12 अंक
(ड.) किसी एक कवि या लेखक का परिचय – 1X2=02 अंक
(च) 2 अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न (1 गद्य एवं 1 पद्य भाग से) – 2X2=04 अंक

खण्ड–4

पाठ्य पुस्तक–द्वितीय पुस्तक (मंदाकिनी) – 16 अंक
(क) 1 निबंधात्मक प्रश्न (विकल्प सहित) – 1X4=04 अंक
(ख) 4 लघूत्तरात्मक प्रश्न – 4X3=12 अंक

आमुख

विद्यार्थियों में भारतीय संस्कृति और परम्पराओं के निर्वहन की भावना का संचार हो सके, इस हेतु महापुरूषों के प्रेरक व्यक्तित्वों के पाठ सम्मिलित किये गये हैं। पुस्तक में संकलित सभी पाठ कहानी, संस्मरण, निबन्ध आदि विद्यार्थियों की अभिव्यक्ति की क्षमता को समृद्ध करेंगे, ऐसी आशा है।

संकलन में किशोर वर्ग की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं, साहित्य–रोचकता व चरित्र निर्माण के उद्देश्यों को प्राथमिकता दी गई है, जो विद्यार्थियों में मातृभूमि के मान–सम्मान और प्रतिष्ठा की रक्षा का अहसास जगाता है। समग्र संकलन हमारे युवा–वर्ग के चरित्र को सँवारने, जीवन की सच्चाइयों को जानने और नए अनुभवों से परिचित होने का अवसर प्रदान कर सकेगा।

लेखकों के संक्षिप्त परिचय से विद्यार्थी उनके साहित्यिक योगदान व रचना कौशल के साथ शैली–वैशिष्ट्य से अवगत होंगे साथ ही प्रत्येक पाठ में दिए गए पाठ–परिचय से वर्ण्य–विषय को समझ कर विषय–वस्तु को आत्मसात् कर पायेंगे, ऐसा विश्वास है।

पुस्तक में प्रत्येक पाठ के अन्त में शब्दार्थ दिये गये हैं जिनसे भाषायी पक्ष सुगम होगा एवं प्रश्नों की विविधता सम्पूर्ण पाठ के मूल भाव सहित भाषा, शैली व समालोचना के उद्देश्यों को पूरा करेगी।

'मंदाकिनी' को अभिव्यक्त करने में संकलनकर्ताओं द्वारा पूर्ण सतर्कता बरती गई है फिर भी यदि न्यूनताएँ हों तो उनके परिष्कार हेतु आपके सकारात्मक सुझावों का स्वागत है।

हम उन सभी लेखकों के आभारी हैं जिनके लेख पुस्तक में संकलित हैं तथा सभी के प्रति हृदय से कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

सम्पादकगण

अनुक्रमणिका

पाठ		पृष्ठ संख्या
1.	हिन्दी गद्य का विकास	1—8
2.	राष्ट्र का स्वरूप (निबन्ध) – डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवाल	9—14
3.	निर्वासित (कहानी) – सूर्यबाला	15—25
4.	हमारी पुण्य भूमि और उसका गौरवमय अतीत (भाषण अंश) – एकनाथ रानाडे	25—32
5.	रामकुमार वर्मा से बातचीत (साक्षात्कार) – शैवाल सत्यार्थी	33—39
6.	सुभाषचन्द्र बोस (जीवनी) – संकलित	40—50
7.	सुभद्रा (संस्मरण) – महादेवी वर्मा	51—59
8.	भारत के महान वैज्ञानिक—जगदीश चन्द्र बोस (आत्मकथा) —परमहंस योगानंद	60—68
9.	भोर का तारा (एकांकी) – जगदीश चन्द्र माथुर	69—81
10.	गेहूँ बनाम गुलाब (निबन्ध) – रामवृक्ष बेनीपुरी	82—87
11.	यात्राः एक पावन तीर्थ की (यात्रावृत्त) – डॉ. देव कोठारी	88—97

•••

हिन्दी गद्य का विकास

गद्य : स्वरूप

संस्कृत साहित्यशास्त्र में गद्य को गद्य काव्य के अर्थ में ग्रहण किया गया है, इसलिए भामह, दण्डी, वामन से लेकर विश्वनाथ तक सभी आचार्यों ने गद्य के प्रभेदों में आख्यायिका, वृत्त, कथा आदि का उल्लेख किया है। भामह ने गद्य को प्रकृत, अनाकुल, श्रव्य शब्दार्थ पद्‌वृत्ति कहा है (काव्यालंकार–1,25) और दण्डी ने 'अपाद'–गण–मात्रारहित (काव्यादर्श –1, 13)। वामन ने परिभाषा न देकर उसकी विशेषताओं को दुर्ज्ञेय तथा उसकी रचना को गठित बनाते हुए 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' (गद्य को कवियों की कसौटी कहते हैं) उद्धरण देकर साहित्य में उसकी महत्ता का निर्देश किया है (काव्यालंकारसूत्रवृत्ति – 1, 3, 21)। 'साहित्य दर्पण' (विश्वनाथ) में गद्य की कोई परिभाषा नहीं दी गयी है। केवल उसे काव्य कहकर उसके चार भेद बताये गये हैं– मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय और चूर्णक। मुक्तक समासरहित होता है। वृत्तगन्धि में छन्द की गन्ध आती है अर्थात् उसके वाक्यों और वाक्यांशों में प्रायः छन्दों के गण– मात्रा का विधान पाया जाता है, उत्कलिकाप्राय गद्य दीर्घ समासयुक्त होता है तथा चूर्णक में छोटे – छोटे समासों का प्रयोग होता हैं, (सा.द.–6, 330, 331)। विश्वनाथ ने गद्य के अन्तिम तीन भेद वामन के ही आधार पर दिये हैं। मुक्तक नाम का भेद वामन ने नहीं किया।

काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में गद्य इन भेदों की, जिन्हें शैली का भेद समझना चाहि,, किंचित् अधिक स्पष्ट मिलती है। पद्य भाग से युक्त या उसके समान प्रतीत होने वाला गद्य जिसमें वृत्त या छन्द की गन्ध मिले, वृत्तगन्धि होता है, दीर्घ समास से रहित और ललित पदों से युक्त गद्य चूर्णक कहलाता है तथा इससे विपरीत दीर्घ समासयुक्त और उद्धत पदों से युक्त गद्य को उत्कलिकाप्राय कहते हैं (काव्यालंकारसूत्रवृत्ति–1, 3, 22, 25)। (हिन्दी साहित्य कोश, भाग –1, पृ. 253–254)

संस्कृत साहित्यशास्त्र में कथा, आख्यायिका, आख्यान आदि के लिए ही गद्य का उपयोग बताया गया है। कथात्मक साहित्य के अतिरिक्त विचारात्मक लेखन के लिए गद्य के साहित्यिक प्रयोग तथा शास्त्रीय और वैज्ञानिक विषयों के लिए उसके व्यावहारिक उपयोग की ओर संकेत नहीं किया गया है।

गद्य की सबसे सरल, व्यापक और सर्वमान्य परिभाषा यही हो सकती है कि जिस शब्दार्थयुक्त भाषा का साधारण बातचीत में प्रयोग किया जाता है, वही गद्य है। इससे भिन्न पद्य में असाधारण भाषा का प्रयोग होता है। इसमें विशेष प्रकार के क्रमबद्ध ताल और लय की योजना के लिए वाक्यगत शब्दों के साधारण क्रम में परिवर्तन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त गद्य का लक्ष्य सहज, सरल, सीधे और निश्चित प्रयोजनयुक्त, भामह के शब्दों में प्रकृति और अनाकुल शब्दार्थ को प्रेषित करना है। पद्य का भी व्यवहार निश्चित प्रयोजन के लिए हो सकता है। वस्तुतः प्राचीन भारतीय शास्त्र और विज्ञान के विषय भी पद्य में लिखे जाते थे। परन्तु उसमें सर्वत्र शब्दार्थ की सरलता और सीधापन सुरक्षित नहीं रह पाता था, क्योंकि शब्दों की विशिष्ट

छन्दोबद्ध योजना के लिए उसमें कृत्रिमता, भंगिमा और वक्रता आ जाना स्वाभाविक है। अतः गद्य–पद्य का भेद स्पष्ट है। काव्य की सौन्दर्यवृत्ति से सर्वथा असंपृक्त रहकर भी दोनों समानुरूप नहीं हो सकते, उनके रूप और प्रकृति का अन्तर निर्विवाद है। इस दृष्टि से पद्य और काव्य में अन्तर किया गया है। परन्तु जैसा कि साधारणतः होता है, यदि काव्य को अनिवार्यतः पद्यबद्ध न मान लिया जाय तो गद्य और काव्य में कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती । काव्य के अनेक रूप गद्य में ही रचे जाते हैं। फिर भी गद्य रचना के बाह्य रूप का ही नहीं, उसकी आन्तरिक प्रकृति का द्योतक है। हम अनेक पद्यबद्ध काव्यकृतियों को गद्यात्मक कहते हैं, क्योंकि उनमें संवेदनशीलता की अपेक्षा बोधवृत्ति की प्रधानता होती है। गद्य मुख्यतः बोध, व्याख्या, तर्क, वर्णन और कथा के क्षेत्रों में ही सीमित है।

प्रयोग की दृष्टि से गद्य का साधारण रूप वह है जो व्यावहारिक प्रयोग में आता है। दो व्यक्तियों के बीच सामान्य बातचीत से लेकर बड़ी–बडी़ गोष्ठियों और सभाओं के कलापूर्ण प्रभावशील भाषणों तक , कुशलक्षेम सम्बन्धी साधारण पत्र–व्यवहार से लेकर शास्त्र और विज्ञान के विविध विषयों के विश्लेषण, विवेचन, अनुशीलन और अनुसंधानपूर्ण प्रबन्धों तक, बड़े–बड़े धर्माचार्यों के उपदेशों तथा कथावाचनों से लेकर चबूतरे पर बैठकर परस्पर गप्प लगाने तक में गद्य के व्यावहारिक स्वरूप का प्रयोग होता है। इन सब गतिविधियों में गद्य के अनेक रूपों का उपयोग होता रहता है। इन अनेक रूपों को एक परिभाषा में बाँधना भी सरल नहीं है। साधारण जीवन में प्रयोग के साथ ही गद्य का उपयोग रचनात्मक लेखन में भी पूरी तन्मयता के साथ होता है। अभिव्यक्ति का जितना प्रभावशाली रूप पद्य है उतना ही गद्य भी। इतना ही नहीं विश्व में अनेक विषय ऐसे हैं जिनका विश्लेषण तथा अनुशीलन गद्य में ही संभव है। इसलिए गद्य हमारे सांस्कृतिक जीवन की पहचान बन गया है।

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी में गद्य इतना कम तथा अविकसित दशा में मिलता है कि उसे प्रायः नगण्य–सा समझा जाता है। पुराने समय में हिन्दी में गद्य का विकास क्यों नहीं हो पाया, इसका कारण खोजने का प्रयास विद्वानों ने किया है। कुछ लोगों का मानना है कि भारत की लगभग हर भाषा के साहित्य का आरम्भ पद्य–रचना से ही हुआ है, अतः हिन्दी में भी ऐसा होना स्वाभाविक है। कुछ विद्वान यह भी सोचते हैं कि हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का व्यापक प्रभाव पड़ा और हिन्दी साहित्य ने काफी कुछ संस्कृत साहित्य से लिया इसलिए संस्कृत की तरह यहाँ भी पद्य–रचना को ही अधिक प्रश्रय मिला। किन्तु यह धारणा भ्रामक है क्योंकि संस्कृत में 'काव्य' शब्द का प्रयोग– गद्य और पद्य – दोनों के लिए होता था तथा गद्य को कवियों की कसौटी समझा जाता था। साथ ही प्राचीन काल में संस्कृत में उच्च कोटि का गद्य लिखा गया। हिन्दी में गद्य के विकसित न होने के कारण शायद यह रहा कि आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल में हमारे यहाँ जीवन का दृष्टिकोण बौद्धिकतापरक, यथार्थवादी, वस्तुवादी और व्यावहारिक नहीं रहा जबकि गद्य के विकास के लिए इस प्रकार की जीवन– स्थितियाँ आवश्यक हैं।

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य बहुत विकसित नहीं था। जब हम आधुनिक हिन्दी गद्य के विकास पर दृष्टिपात करते हैं तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी गद्य के विकास में ईसाई प्रचारकों ने काफी योगदान दिया, क्योंकि वे भारतीय जनता तक उसी की भाषा में अच्छी तरह पहुँच सकते थे। राजा राममोहन राय तथा उनके ब्रह्म समाज ने भी हिन्दी गद्य के विकास में योगदान दिया। उन्होंने वेदान्त–सूत्रों

का हिन्दी गद्य मे अनुवाद कराया तथा ''बंगदूत'' नाम से हिन्दी में एक पत्रिका भी निकाली। इसी काल में हिन्दी में पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ। 1826 ई. में पं. जुगल किशोर शुक्ल के सम्पादकत्व में हिन्दी का पहला पत्र ''उदन्त मार्तण्ड'' नाम से कानपुर से प्रकाशित हुआ। इसी परम्परा में ''बनारस अखबार'' (राजा शिवप्रसाद के सम्पादकत्व में), ''सुधाकर'' (तारामोहन मिश्र के सम्पादकत्व में), ''बुद्धिप्रकाश'' (मुंशी सदासुख लाल के सम्पादन में) आदि अनेक पत्र निकले जिन्होंने हिन्दी गद्य की परम्परा को समृद्ध किया।

आधुनिक हिन्दी गद्य का सही विकास भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के उदय के साथ होता है। भारतेन्दु ने अपनी गद्य–शैली को अत्यन्त व्यावहारिक और समय की आवश्यकता के अनुरूप ढ़ाला। उन्होंने हिन्दी को न तो संस्कृत तत्सम शब्दावली से बोझिल होने दिया न उर्दू– फारसी के शब्दों के सार्थक प्रयोग को हतोत्साहित किया। उन्होंने विषयवस्तु, भाव–विशेष एवं रूप–विशेष के अनुसार विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। प्रणय, विरह या शोक के प्रसंगों में उनकी शैली अत्यन्त कोमल और मधुर हो जाती है तो हास्य के प्रसंगों में चुलबुलेपन से युक्त हो जाती है। वस्तुतः भारतेन्दु भाषा के मर्म को समझने वाले प्रतिभाशाली रचनाकार थे तथा उसे विषय, भाव एवं प्रसंग के अनुसार ढ़ालने में माहिर थे। भारतेन्दु जी के समकालीनों में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द, राजा लक्ष्मण सिंह ऐसे लेखक रहे हैं जिन्होंने हिन्दी गद्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतेन्दु युग के अन्य लेखकों में देवकीनन्दन खत्री, बालमुकुन्द गुप्त, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, श्री निवासदास, राधाकृष्ण दास, राधाचरण गोस्वामी, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', श्रद्धाराम फिल्लौरी, किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम मेहता आदि ने उल्लेखनीय रचनाकर्म तथा हिन्दी गद्य की परम्परा को समृद्ध किया । इन लेखकों ने गद्य की अनेक विधाओं में लिखा तथा हिन्दी के प्रचार–प्रसार को अपने रचनाकर्म का लक्ष्य भी बनाया। उस काल में देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता' तथा 'चन्द्रकान्ता संतति' का प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। लोगों ने इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी, यह हिन्दी गद्य की शक्ति का प्रमाण है। बालमुकुन्द गुप्त, बालकुष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र ने उच्च कोटि के निबंध लिखकर इस विधा को गरिमा प्रदान की।

इस काल में हिन्दी गद्य के विकास में आर्य समाज आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इस आन्दोलन ने धर्म, समाज, शिक्षा, साहित्य आदि क्षेत्रों में वैचारिक क्रान्ति की। आर्य समाज ने उत्तर भारत की बौद्धिक चेतना को झकझोर दिया। बौद्धिक चेतना का संबंध गद्य से सीधा होता है, क्योंकि विचार– विमर्श, तर्क–वितर्क, चिन्तन–मनन के लिए जो बौद्धिक प्रयास होते हैं वे गद्य में ही संभव है। स्वयं दयानन्द सरस्वती ने अपना 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ हिन्दी में लिखा जिसमें उन्होंने वैदिक धर्म की व्याख्या के बाद विभिन्न वेद–विरोधी धर्म–सम्प्रदायों का खण्डन किया है। यहाँ हम यह कहना चाहते हैं कि आर्य समाज ने अपने सुधार कार्यो के माध्यम से हिन्दी गद्य के विकास में योगदान दिया। आर्य समाज के प्रभाव के कारण ही हिन्दी में अनेक जीवन–चरित्रों, इतिहास–ग्रन्थों, साहित्यिक–ग्रन्थों, धार्मिक–ग्रन्थों एवं शास्त्रीय–ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। आर्य समाज के प्रभाव से हिन्दी में अनेक पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई।

हिन्दी गद्य के क्षेत्र में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने नयी गति प्रदान की। हिन्दी का प्रचार–प्रसार तथा हिन्दी के स्वरूप का स्थिरीकरण जैसे द्विवेदीजी के जीवन का लक्ष्य था। उन्होंने 1900 ई.

में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। एक समय 'सरस्वती' पत्रिका भारत की हिन्दी चेतना की सबसे सशक्त मंच बन गयी। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने समकालीन लेखकों को प्रेरित कर नये–नये विषयों पर लिखवाया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि हिन्दी की प्रगति तभी सम्भव है, जब उसमें विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, तकनीक जैसे विषयों में साहित्य उपलब्ध हो। गद्य के संबंध में उन्होंने एकरूपता, व्याकरण के दोष–परिष्कार,, शब्दों के उपयुक्त प्रयोग आदि का पूरा ध्यान दिया।

हिन्दी गद्य का प्रौढ़तम रूप महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनके परवर्ती लेखकों की रचनाओं में मिलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंधो में जहा विवेचन–शैली की गम्भीरता का सर्वोत्कृष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है, वहां जयशंकर 'प्रसाद', प्रेमचन्द, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा आदि की शैली में गद्य की सरसता, चित्रात्मकता एवं कलात्मकता के श्रेष्ठ उदाहरण होते हैं। वस्तुतः आज का हिन्दी गद्य विषय–क्षेत्र की व्यापकता, साहित्य रूपों की विविधता एवं गद्य–शैली की प्रौढ़ता की दृष्टि से अत्यन्त गंभीर, व्यापक और समृद्ध है।

गद्य की विविध विधाएँ

द्विवेदी युग में हिन्दी गद्य का पर्याप्त परिष्कार हुआ और अनेक प्रकार की गद्य विधाएँ भी विकसित हुई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विविध विकसित राष्ट्रों के साथ सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक सम्पर्क बढ़ जाने से हिन्दी साहित्य में नये–नये तत्त्व विकसित हुए। गद्य शैली और गद्य–विधा का प्रयोग और विकास भी बड़ी तीव्रता से हुआ। औद्योगीकरण, महानगरीय सभ्यता, बदले हुए मानसिक परिवेश और परिवर्तित राजनैतिक व्यवस्था के कारण इस काल के साहित्य की विविध गद्य–विधाओं का अलग–अलग परिचय ही अधिक स्पष्ट और सुगम है।

कहानी– कहानी इस युग की सबसे सशक्त गद्य–विधा है, जिसका विकास बहुत तीव्रता से हुआ है। इसकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय साहित्य में तो इसका प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में बताया गया है। इसका स्वरूप निरन्तर बदलता रहा है। कहानी में जीवन की किसी एक घटना का चित्रण रहता है। मानव चरित्र के किसी एक बिन्दु को प्रकाशित करना कहानी का लक्ष्य होता है। इसमें कथावस्तु, पात्र, देश–काल और परिस्थिति का वर्णन रहता है। यह कहानी के प्रमुख तत्त्व कहे ग, हैं। हिन्दी में आधुनिक कहानी का जन्म ई.स. 1901 से माना जाता है– (1) उद्‌भवकाल (1901–1915 ई.), (2) विकासकाल (1916–1935 ई.), (3) उत्कर्षकाल (1936–1950 ई.), (4) प्रगति–प्रयोगकाल (1950 ई.के पश्चात्)। इस अन्तिम काल में युगीन संक्रमण के दबावों के परिणामस्वरूप तनाव, मूल्यों की तलाश तथा विविध सन्दर्भों की कहानियाँ लिखी गई।

एकांकी– आधुनिक एकांकी पाश्चात्य साहित्य की देन है। यह नाटक–साहित्य का वह नाट्य–प्रधान रूप है, जिसके माध्यम से मानव जीवन के किसी एक पक्ष, एक चरित्र, एक कार्य अथवा एक भाव की कलात्मक व्यंजना की जाती है। नाटक और एकांकी में वही अन्तर है जो उपन्यास और कहानी में है। कथावस्तु, पात्र–विधान, संवाद और रंग–संकेत– इसके प्रमुख तत्त्व हैं। एकांकी में स्थान, काल तथा कार्य के संकलन का निर्वाह आवश्यक माना गया है। मानव की असंख्य अभिरूचियों के अनुसार एकांकी के

विषय भी असंख्य होते हैं। हिन्दी एकांकी का वास्तविक आरम्भ ई. स. 1930 से कहा गया है। सामान्यतः जयशंकर 'प्रसाद' के ''एक घूंट'' (1929) को हिन्दी का पहला एकांकी होने का गौरव दिया जाता है। पाश्चात्य प्रभाव के कारण हिन्दी एकांकी में विषय और शैली की दृष्टि से निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। आधुनिक काल के एकांकी आधुनिक बोध को उजागर करने का प्रयास कर रहे हैं।

निबन्ध – इसका मौलिक अर्थ 'बाँधना' या 'रोकना' होता है। हिन्दी में इसके पर्याय रूप में 'प्रबन्ध', 'लेख', 'रचना', एवं प्रस्ताव शब्द प्रचलित हैं। वास्तव में निबंध उस गद्य–रचना को कहा जाता है जिसमें लेखक निर्वैयक्तिक ढंग से किसी विषय पर प्रकाश डालता है। निबंध अपने मौलिक अर्थ के विपरीत बन्धनहीन है। इसमें लेखक स्वच्छन्दता पूर्वक अपनी बात कहता है। स्वच्छन्दता, सरलता, आडम्बरहीनता और आत्मीयता– निबंध के प्रमुख गुण माने गये हैं। आधुनिक गद्य–युग में निबंध का महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है। हिन्दी निबंध के विकास को तीन कालों में विभाजित किया जाता है–

(1) भारतेन्दु–काल (1850–1900), (2) द्विवेदी–शुक्ल–काल (1901–1947), (3) अधुनातन–काल (1948 के पश्चात्)। अन्तिम काल में विचारप्रधान, भावप्रधान, प्रतीकात्मक, मनोवैज्ञानिक, हास्य–व्यंग्य–प्रधान, वर्णन–प्रधान इत्यादि अनेकविध निबंध लिखे गये हैं। आज हिन्दी में निबंध विधा अपने उच्च शिखर पर है।

रेखाचित्र – जिस प्रकार कोई चित्रकार थोड़ी–सी रेखाओं के द्वारा सजीव चित्र बना देता है, उसी प्रकार थोड़े–से शब्दों में किसी वस्तु अथवा घटना का चित्रण करना रेखाचित्र कहलाता है। रेखाचित्रकार का मुख्य उद्देश्य अपनी शब्द–रेखाओं के द्वारा पाठक में संवेदना जागृत करना होता है। इसमें अनुभूत जीवन का सत्य व्यक्त होता है। रेखाचित्र में एक ही वस्तु–घटना या चरित्र प्रधान होता है, जिससे सम्बन्धित प्रमुख विशेषताओं को उभारा जाता है। रेखाचित्र और संस्मरण में विभाजक रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। संक्षेप में रेखाचित्र वस्तुनिष्ठ है और संस्मरण व्यक्तिनिष्ठ। यथार्थ अनुभूति, संवेदनशील दृष्टि, तटस्थता तथा सूक्ष्म निरीक्षण रेखाचित्रकार के आवश्यक गुण हैं। हिन्दी में 1929 में प्रकाशित पण्डित पद्मसिंह शर्मा के ''पद्म पराग'' को इस कला का जनक कहा जाता है। इसके बाद हिन्दी रेखाचित्रों में निरन्तर विकास होता रहा । यह नवीन विधा आज बड़ी तीव्रता से विकसित और समृद्ध हो रही है। इसका भविष्य और भी अधिक उज्ज्वल है।

संस्मरण – इसमें किसी विशेष व्यक्ति अथवा स्थान की विशेषताओं को इस ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि वह अपने आप में एक छोटी–सी इकाई बन जाता है। इसमें कहानी, व्यंग्य–विनोद, वर्णन–विवरण, रेखाचित्र आदि का सम्मिश्रण रहता है। यह व्यक्ति अथवा स्थान के गहरे सम्पर्क के आधार पर ही लिखा जा सकता है। संस्मरण के मूल में अतीत की स्मृतियाँ होती हैं, जो व्यक्तिगत गहन सम्पर्क का परिणाम होती है। संस्मरण– लेखक केवल महत्त्वपूर्ण बातों को ही ग्रहण नहीं करता, वरन् छोटी–से–छोटी घटना को भी लेकर सूक्ष्मता के साथ अंकित कर देता है। लेखक को तटस्थ किन्तु सहानुभूतिपूर्ण वृत्ति रखनी चाहिए। सूक्ष्म विश्लेषण, सजीव चित्रण–शक्ति, सहानुभूति–पूर्ण हृदय तथा सहज स्वाभाविकता संस्मरण के आवश्यक गुण हैं। हिन्दी में संस्मरण–विधा का उद्भव और विकास रेखाचित्र के साथ ही हुआ है। हिन्दी में प्रसिद्ध साहित्यकारों और महापुरूषों से सम्बन्धित संस्मरण ही अधिक लिखे गये हैं, किन्तु

समाज के अनिवार्य अंग निम्न वर्ग के व्यक्तियों के संस्मरणों का भी विशेष महत्त्व है। हिन्दी का संस्मरण–साहित्य अपने विविध रंगों और साज–सज्जाओं में समृद्ध होता जा रहा है।

आत्मकथा – आत्मकथा– जीवनी का ही एक प्रकार है, जिसमें लेखक स्वयं अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन करता है, और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्त्व दिखलाता है। आत्मकथा का उद्देश्य आत्मांकन द्वारा आत्मपरिष्कार एवं आत्मोन्नति करना होता है। लेखक के अनुभवों का लाभ अन्य लोग भी उठा सकते हैं। इसमें लेखक अपने जीवन पर जो प्रकाश डालता है उससे युग– विशेष की मानसिक संरचना का भी उसके जीवन के माध्यम से बोध हो जाता है। आत्मकथा लेखन के अनेक खतरे हैं। लेखक को आत्मश्लाघा एवं आत्म – संकोच– दोनों से बचना चाहिये। दोषों के उद्‌घाटन में जहां आत्म–संकोच की प्रवृत्ति बाधक होती है, वहीं आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति उसे अरूचिकर भी बना देती है। तटस्थ रहकर आत्मकथा–लेखक को अपने गुण–दोषों को प्रकट करना चाहिए। हिन्दी में प्राचीनकाल से आत्मकथा–लेखन की प्रवृत्ति प्रचलित है। आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850–1885 ई.) ने आत्मकथा लिखी थी। कालान्तर में अनेक कलात्मक और मनोवैज्ञानिक आत्मकथाएँ लिखी गई, जिनमें स्वाभाविकता, सत्यवादिता तथा निष्कपट आत्मप्रकाशन के गुण विद्यमान हैं।

यात्रा–वर्णन – यात्रा मानव की एक मूल प्रवृत्ति है। ऋतु–परिवर्तन, स्थानों की विविधता, प्रकृति–सौन्दर्य का आकर्षण मानव के मन में उल्लास पैदा करते हैं और इसी उल्लास की भावना से प्रेरित होकर वह यात्रा के लिए निकल पड़ता है। जब कोई साहित्यिक मनोवृत्ति वाला व्यक्ति अपनी मुक्त अभिव्यक्ति को शब्दबद्ध करता है, उसे यात्रा–साहित्य अथवा यात्रा–वर्णन कहते हैं। हमारे देश में यात्री तो अनेकानेक हुए, किन्तु यात्रा–वर्णनों को शब्दबद्ध करने की ओर ध्यान आधुनिक काल में ही गया है। इसीलिए यात्रा–वर्णन आधुनिक गद्य–विधा है। अन्य गद्य–विधाओं की भांति यह विधा भी पाश्चात्य सम्पर्क का ही परिणाम है। इसमें लेखक उन्हीं क्षणों का वर्णन करता है, जिनको वह अनुभूत सत्य के रूप में ग्रहण करता है। वह अपने वर्णन में संवेदनशील होकर भी निरपेक्ष रहता है। अधिकतर यात्रा–वर्णन संस्मरणात्मक साहित्य ही होता है। हिन्दी में भारतेन्दु युग से इसका प्रारम्भ हुआ। युग और भावबोध के परिवर्तन के साथ यात्रा–दृष्टि में भी अन्तर आ जाता है।

रिपोर्ताज – 'रिपोर्ताज' शब्द मूलतः फ्रेंच भाषा का है। दूसरे महायुद्ध के दौरान इसका सर्वप्रथम प्रयोग हुआ। किसी घटना को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत कर देना ''रिपोर्ट'' कहलाता है, लेकिन उसी को साहित्यिक सरसता तथा कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करना ''रिपोर्ताज'' है। यह रोचक पत्रकारिता का अंग है। समाचार –पत्रों के लिए लिखी गई रिपोर्ट की तरह यह भी तथ्यपरक, तात्कालिक और वस्तुनिष्ठ साहित्य–विधा है। यह आशु कविता की भांति तुरंत, बिना किसी पूर्व तैयारी के, लिखा जाता है। इसमें कल्पना के लिए अधिक अवकाश नहीं रहता। लेखक कथ्य और तथ्य के प्रति सामूहिक प्रतिक्रिया को शब्दबद्ध कर देता है। रोचकता, उत्सुकता, साहित्यिकता और कलात्मकता उत्तम रिपोर्ताज के आवश्यक गुण हैं। हिन्दी में यह नवीन गद्य–विधा अभी विकासोन्मुख अवस्था में है। यह विकास आधुनिक युग में तीव्रता से हो रहा है। दूसरा महायुद्ध, आजाद हिन्द सेना का निर्माण, बंगाल का दुर्भिक्ष आदि के कारण हिन्दी में इस विधा का प्रादुर्भाव हुआ बताया जाता है।

साक्षात्कार – इस विधा के उद्‌भव का कारण पश्चिमी देशों में व्यक्ति–स्वातन्त्र्य और व्यक्ति की महत्ता की स्वीकृति है। वैसे तो सभी देश–कालों मे व्यक्ति विशेष का महत्त्व रहा है, किन्तु आधुनिक काल में साधारण मानव के व्यक्तित्त्व की भी अभिव्यक्ति और आत्मानुभूति के प्रकाशन का विशेष अवसर मिला है। इसमें लेखक किसी व्यक्ति से कुछ प्रश्न पूछकर उनके उत्तर पाता है और उन्हें लिखित रूप में प्रकाशित करता है। साक्षात्कार लेने वाला साक्षात्कार देने वाले की परिस्थिति, भाव–भंगिमा तथा व्यवहार से कुछ उपयोगी निष्कर्ष निकालता है। निष्कर्ष ऐसे होने चाहिए कि जिनसे साक्षात्कार देने वाले के स्वभाव की किसी विशेषता का पता चलता हो और जिन्हें वह स्वीकार भी करता हो। हिन्दी में साक्षात्कार–विधा अंग्रेजी के प्रभाव से आई है। इसका सूत्रपात कब से हुआ, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। संवाद, बातचीत, भेंट आदि के नाम से इसे अभिहित किया जाता रहा है, किन्तु एक साहित्य–विधा के रूप में साक्षात्कार का आरम्भ 1952 में डॉ. पद्‌मसिंह शर्मा "कमलेश" के द्वारा हुआ। उन्होंने हिन्दी के समकालीन श्रेष्ठ साहित्यकारों से साक्षात्कार लेकर मौलिक कार्य किया है।

हास्य–व्यंग्य – इस विधा का क्षेत्र बड़ा व्यापक और विस्तृत है। सामाजिक और राजनीतिक जीवन के प्रत्येक अंग की विसंगति को अपने व्यंग्य एवं हास्य का लक्ष्य बनाना लेखक का उद्‌देश्य रहता है। इसमें समसामयिक सामाजिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार, आडम्बर, अवसरवादिता, अंधविश्वास इत्यादि दुष्प्रवृत्तियों तथा विसंगतियों पर प्रहार करते हुए इन्हें परिहास या व्यंग्य के रूप में अभिव्यक्त करना होता है। इसकी विशेषता यह है कि इस हास्य–व्यंग्य के पीछे विसंगति के परिशोधन का एक मात्र दृष्टिकोण रहता है। इस प्रकार की रचनाओं में शब्दों का अभिधार्थ कुछ और होता है तथा व्यंग्यार्थ कुछ और। यह व्यंग्यार्थ ही इसका वास्तविक अर्थ होता है। इस अर्थ में एक विशेष पैनापन एवं चुटीलापन होता है जो पाठक के मन में कटुता से रहित, संस्कारयुक्त एक मीठी गुदगुदी उत्पन्न करता है। मनोरंजन इसकी प्रधान विशेषता है। हिन्दी में भारतेन्दु युग से ही शिष्ट–हास्य–व्यंग्य–विधा का आरम्भ हुआ है, किन्तु वर्तमान युग में इसने विशेष उन्नति की है। आधुनिक हिन्दी के सफल व्यंग्य– लेखकों में हरिशंकर परसाई का स्थान सर्वोपरि है।

गद्य–काव्य – छन्द– बन्धन–रहित और इतिवृत्तहीन ऐसी भावपूर्ण और कल्पना–प्रधान रचना को गद्य–काव्य कहते हैं, जिसमें बुद्धितत्त्व को विशेष महत्त्व न दिया गया हो। गद्य–काव्य आधुनिक युग की एक महत्त्वपूर्ण और पुष्ट विधा है। इसमें एक ही केन्द्रीय भाव की प्रधानता रहती है। एक ही सांद्र–अनुभूति या केन्द्रीय भावना की प्रधानता के कारण गद्य–काव्य का आकार छोटा होता है। इसका बाह्य रूप भी साधारण गद्य की अपेक्षा अधिक लययुक्त, अलंकृत और सधा हुआ होता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि इसका सबसे श्रेष्ठ उदाहरण है। वैयक्तिक आत्मनिष्ठता, तीव्र भावात्मकता, अन्तर्निहित ध्वनि–संगीत, भाव–संकलन और गीति के लिए अपेक्षित भाव–विकास इसकी प्रमुख विशेषताएँ होती है। यों इसके सूत्र वेद–उपनिषद् में खोजे जा सकते हैं, किन्तु आधुनिक युग में मुद्रण की सुविधा और बौद्धिकता के विकास के साथ गद्य–काव्य का भी सूत्रपात हुआ है। हिन्दी में भारतेन्दु युग में ही इस विधा का प्रवर्त्तन हो गया था और आज यह विधा भी पर्याप्त उन्नत हो गई है।

फीचर – पाश्चात्य प्रभाव से आयी हुई यह एक नयी साहित्य–विधा है। यथातथ्य सूचनाओं पर आधारित रचना को फीचर कहा जाता है। हिन्दी में इसे रूपक भी कहा जा सकता है। इसमें रूपक की भांति

दो कथाएँ साथ–साथ चलती है। जिस प्रकार रूपक कथा में प्रस्तुत कथा के अतिरिक्त एक अन्य अप्रस्तुत कथा भी अन्तर्निहित रहती है, उसी प्रकार फीचर में भी किसी स्थान के वर्णन के साथ–साथ एक अतिरिक्त कथा को भी प्रस्तुत किया जाता है। इसमें लेखक का उद्देश्य केवल स्थान का परिचय देना मात्र नहीं होता, किन्तु उसके माध्यम से उस स्थान के व्यक्तित्व को समग्र रूप में उद्घाटित करना होता है। रूपक–कथाकाव्य की भांति फीचर भी पाठक को एकसाथ दो रूपों में प्रभावित करता है। इसमें सब प्रकार की वास्तविकताओं का नाटकीयकृत रूप उपस्थित किया जा सकता है। हिन्दी में इस विधा का आरम्भ हुए अभी दो–तीन दशक ही हुए है। अभी तो पत्र–पत्रिकाओं के स्तम्भों से ही कलात्मक फीचर प्रकाशित हो रहे हैं। आशा हैं कि शीघ्र ही यह गद्य–विधा हिन्दी–साहित्य में अपना समुचित स्थान बना लेगी।

राष्ट्र का स्वरूप

—डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल

लेखक–परिचय

वासुदेव शरण अग्रवाल का जन्म 7 अगस्त 1904 को ग्राम खेड़ा जिला गाजियाबाद में हुआ तथा देहावसान 26 जुलाई 1966 को हुआ।

डॉ. अग्रवाल कला, संस्कृति, साहित्य व इतिहास के मूर्धन्य विद्वान थे। पुरातत्व में विशेष रूचि से मथुरा, लखनऊ और राष्ट्रीय पुरातत्व संग्रहालय दिल्ली में अपनी विशिष्ट सेवाएँ देते हुए संग्राहक के रूप में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

आप गाँधी जी से विशेष रूप से प्रभावित थे। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के दौरान आपने सरकारी विद्यालय छोड़ दिया और खादी–वस्त्र धारण कर लिए।

आपके लेखन में भारतीय इतिहास, संस्कृति व जीवन दर्शन का प्रभावी वर्णन मिलता है।

आपने वेद–पुराण व संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन कर एक परिष्कृत चिन्तन दृष्टि अपने भीतर उत्पन्न की जो आपके लेखन में सर्वत्र विद्यमान है।

इनके द्वारा हिन्दी में लगभग 36 और अंग्रेजी में 23 पुस्तकों की रचनाएँ की गई।

इनकी प्रमुख रचनाओं में – पृथ्वीपुत्र, उरूज्योति, कला और संस्कृति, कल्पवृक्ष, माताभूमि, हर्ष चरित् : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत की मौलिक एकता, मलिक मोहम्मद जायसी, पद्मावत संजीवनी व्याख्या, पाणिनी कालीन भारतवर्ष व भारत सावित्री प्रमुख हैं।

पाठ–परिचय

प्रस्तुत पाठ में लेखक ने तत्वों के आधार पर राष्ट्र के स्वरूप की व्याख्या करते हुए जन के मन में विभिन्न तत्त्वों के सम्मिलन से उसकी उत्कृष्ट राष्ट्र–भावना का परिचय दिया है। भू के प्रति मातृवत् श्रद्धा जन को आदर्श नागरिक बनाती है वहीं संस्कृति तत्त्व उसमें उच्च मूल्यों की प्रतिष्ठा कर उसकी भावात्मक एकता की दृढ़ता का परिचायक है। प्रस्तुत निबन्ध एक गौरवशाली राष्ट्रभाव को जन–जन में प्रसारित करने का स्तुत्य प्रयास है।

****

भूमि, भूमि पर बसने वाला जन और जन की संस्कृति, इन तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।

भूमि का निर्माण देवों ने किया है, वह अनन्त काल से है। उसके भौतिक रूप, सौन्दर्य और समृद्धि

के प्रति सचेत होना हमारा आवश्यक कर्त्तव्य है। भूमि के पार्थिव स्वरूप के प्रति हम जितने अधिक जाग्रत होंगे उतनी ही हमारी राष्ट्रीयता बलवती हो सकेगी। यह पृथ्वी सच्चे अर्थों में समस्त राष्ट्रीय विचारधाराओं की जननी है। जो राष्ट्रीयता पृथ्वी के साथ नहीं जुड़ी व निर्मूल होती है। राष्ट्रीयता की जड़ें पृथ्वी में जितनी गहरी होंगी उतना ही राष्ट्रीय–भावों का अंकुर पल्लवित होगा। इसलिए पृथ्वी के भौतिक स्वरूप की आद्योपान्त जानकारी प्राप्त करना , उसकी सुन्दरता, उपयोगिता और महिमा को पहचानना आवश्यक धर्म है।

इस कर्त्तव्य की पूर्ति सैकड़ों–हजारों प्रकार से होनी चाहिए। पृथ्वी से जिस वस्तु का सम्बन्ध है, चाहे वह छोटी हो या बड़ी, उसके कुशल–प्रश्न पूछने के लिए हमें कमर कसनी चाहिए। पृथ्वी का साँगोपांग अध्ययन जागरणशील राष्ट्र के लिए बहुत ही आनन्दप्रद कर्त्तव्य माना जाता है। गाँवों और नगरों में सैकड़ों केन्द्रों से इस प्रकार के अध्ययन का सूत्रपात होना आवश्यक है।

उदाहरण के लिए, पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाने वाले मेघ जो प्रति वर्ष समय पर आकर अपने अमृत जल से इसे सींचते हैं, हमारे अध्ययन की परिधि के अन्तर्गत आने चाहिए। उन मेघजलों से परिवर्धित प्रत्येक तृण–लता और वनस्पति का सूक्ष्म परिचय प्राप्त करना भी हमारा कर्त्तव्य है।

इस प्रकार जब चारों ओर से हमारे ज्ञान के कपाट खुलेंगे, तब सैकड़ों वर्षों से शून्य और अंधकार से भर हुए जीवन के क्षेत्रों में नया उजाला दिखाई देगा।

धरती माता की कोख में जो अमूल्य निधियाँ भरी हैं जिनके कारण वह वसुन्धरा कहलाती है उससे कौन परिचित न होना चाहेगा ?लाखों–करोड़ों वर्षों से अनेक प्रकार की धातुओं को पृथ्वी के गर्भ में पोषण मिला है। दिन–रात बहने वाली नदियों ने पहाड़ों को पीस–पीस कर अगणित प्रकार की मिट्टियों से पृथ्वी की देह को सजाया है। हमारे भावी अभ्युदय के लिए इन सब की जाँच–पड़ताल अत्यन्त आवश्यक है। पृथ्वी की गोद में जन्म लेने वाले खड़ पत्थर कुशल शिल्पियों से संवारे जाने पर अत्यन्त सौन्दर्य का प्रतीक बन जाते हैं। नाना भाँति के अनगढ़ नग विंध्य की नदियों के प्रवाह में सूर्य की धूप से चिलकते रहते हैं, उन चीलवटों को जब चतुर कारीगर पहलदार कटाव पर लाते हैं तब उनके प्रत्येक घाट से नई शोभा और सुन्दरता फूट पड़ती है, वे अनमोल हो जाते हैं। देश के नर–नारियों के रूप–मण्डन और सौन्दर्य–प्रसाधन में इन छोटे पत्थरों का भी सदा से कितना भाग रहा है , अतएव हमें उनका ज्ञान होना भी आवश्यक है।

पृथ्वी और आकाश के अन्तराल में जो कुछ सामग्री भरी है, पृथ्वी के चारों ओर फैले हुए गम्भीर सागर में जो जलचर एवं रत्नों की राशियाँ हैं, उन सबके प्रति चेतना और स्वागत के नए भाव राष्ट्र में फैलने चाहिए। राष्ट्र के नवयुवकों के ह्रदय में उन सबके प्रति जिज्ञासा की नई किरणें जब तक नहीं फूटतीं तब तक हम सोए हुए के समान हैं।

विज्ञान और उद्यम दोनों को मिलाकर राष्ट्र के भौतिक स्वरूप का एक नया ठाट खड़ा करना है। यह कार्य प्रसन्नता, उत्साह और अथक परिश्रम के द्वारा नित्य आगे बढ़ाना चाहिए। हमारा यह ध्येय हो कि राष्ट्र में जितने हाथ हैं उनमें से कोई भी इस कार्य में भाग लिए बिना रीता न रहे। तभी मातृभूमि की पुष्कल समृद्धि और समग्र रूप–मण्डन प्राप्त किया जा सकता है।

मातृभूमि पर निवास करने वाले मनुष्य राष्ट्र का दूसरा अंग है । पृथ्वी हो और मनुष्य न हों, तो राष्ट्र

की कल्पना असम्भव है। पृथ्वी और जन दोनों के सम्मिलन से ही राष्ट्र का स्वरूप सम्पादित होता है। जन के कारण ही पृथ्वी मातृभूमि की संज्ञा प्राप्त करती है। पृथ्वी माता है और जन सच्चे अर्थों में पृथ्वी का पुत्र है –

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

'भूमि माता है, मैं उसका पुत्र हूँ।'

जन के हृदय में सूत्र का अनुभव ही राष्ट्रीयता की कुंजी है। इसी भावना से राष्ट्र–निर्माण के अंकुर उत्पन्न होते हैं।

यह भाव जब सशक्त रूप में जागता है तब राष्ट्र–निर्माण के स्वर वायुमण्डल में भरने लगते हैं। इस भाव के द्वारा ही मनुष्य पृथ्वी के साथ अपने सच्चे सम्बन्ध को प्राप्त करते हैं। जहाँ यह भाव नहीं है वहाँ जन और भूमि का सम्बन्ध अचेतन और जड़ बना रहता है। जिस समय भी जन का हृदय भूमि के साथ माता और पुत्र के सम्बन्ध को पहचानता है उसी क्षण आनन्द और श्रद्धा से भरा हुआ उसका प्रणाम–भाव मातृभूमि के लिए इस प्रकार प्रकट होता है–

नमो मात्रे पृथिव्यै। नमो मात्रे पृथिव्यै

माता पृथ्वी को प्रणाम है। माता पृथ्वी को प्रणाम है।

यह प्रणाम–भाव ही भूमि और जन का दृढ़ बन्धन है। इसी दृढ़ भित्ति पर राष्ट्र का भवन तैयार किया जाता है। इसी दृढ़ चट्टान पर राष्ट्र का चिर जीवन आश्रित रहता है। इसी मर्यादा को मानकर राष्ट्र के प्रति मनुष्यों के कर्त्तव्य और अधिकारों का उदय होता है। जो जन पृथ्वी के साथ माता और पुत्र के सम्बन्ध को स्वीकार करता है, उसे ही पृथ्वी के वरदानों में भाग पाने का अधिकार है। माता के प्रति अनुराग और सेवा–भाव पुत्र का स्वाभाविक कर्त्तव्य है। वह एक निष्कारण धर्म है। स्वार्थ के लिए पुत्र का माता के प्रति प्रेम, पुत्र के अधोपतन को सूचित करता है। जो जन मातृभूमि के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना चाहता है उसे अपने कर्त्तव्यों के प्रति पहले ध्यान देना चाहिए।

माता अपने सब पुत्रों को समान भाव से चाहती है। इसी प्रकार पृथ्वी पर बसने वाले सब जन बराबर हैं। उनमें ऊँच और नीच का भाव नहीं है। जो मातृभूमि के हृदय के साथ जुड़ा हुआ है वह समान अधिकार का भागी है। पृथ्वी पर निवास करने वाले जन का विस्तार अनंत है–नगर और जनपद, पुर और गाँव, जंगल और पर्वत नाना प्रकार के जन से भरे हुए हैं। ये जन अनेक प्रकार की भाषाएँ बोलने वाले और अनेक धर्मों के मानने वाले हैं, फिर भी वे मातृभूमि के पुत्र हैं और इस कारण उनका सौहार्द भाव अखंड है। सभ्यता और रहन–सहन की दृष्टि से जन एक–दूसरे से आगे–पीछे हो सकते हैं, किन्तु इस कारण से मातृभूमि के साथ उनका जो सम्बन्ध है उसमें कोई भेद–भाव नहीं हो सकता। पृथ्वी के विशाल प्रांगण में सब जातियों के लिए समान क्षेत्र है। समन्वय के मार्ग से भरपूर प्रगति और उन्नति करने का सबको एक जैसा अधिकार है। किसी जन को पीछे छोड़कर राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता। अतएव राष्ट्र के प्रत्येक अंग की सुध हमें लेनी होगी। राष्ट्र के शरीर के एक भाग में यदि अंधकार और निर्बलता का निवास है तो समग्र राष्ट्र का स्वास्थ्य उतने अंश में असमर्थ रहेगा। इस प्रकार समग्र राष्ट्र जागरण और प्रगति की एक जैसी उदार

भावना से संचालित होना चाहिए।

जन का प्रवाह अनन्त होता है। सहस्रों वर्षों से भूमि के साथ राष्ट्रीय जन ने तादात्म्य प्राप्त किया है। जब तक सूर्य की रश्मियाँ नित्य प्रातःकाल भुवन को अमृत से भर देती हैं तब तक राष्ट्रीय जन का जीवन भी अमर है। इतिहास के अनेक उतार–चढ़ाव पार करने के बाद भी राष्ट्र–निवासी जन नई उठती लहरों से आगे बढने के लिए आज भी अजर–अमर हैं। जन का सतत्वाही जीवन नदी के प्रवाह की तरह है जिसमें कर्म और श्रम के द्वारा उत्थान के अनेक घाटों का निर्माण करना होता है।

संस्कृति

राष्ट्र का तीसरा अंग जन की संस्कृति है। मनुष्यों ने युग–युगों में जिस सभ्यता का निर्माण किया है वही उसके जीवन की श्वास–प्रश्वास है। बिना संस्कृति के जन की कल्पना कबन्धमात्र है, संस्कृति ही जन का मस्तिष्क है। संस्कृति के विकास और अभ्युदय के द्वारा ही राष्ट्र की वृद्धि सम्भव है। राष्ट्र के समग्र रूप में भूमि और जन के साथ–साथ जन की संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि भूमि और जन अपनी संस्कृति से विरहित कर दिये जाएँ तो राष्ट्र–लोप समझना चाहिए। जीवन के विटप का पुष्प संस्कृति है। संस्कृति के सौन्दर्य और सौरभ में ही राष्ट्रीय जन के जीवन का सौन्दर्य और यश अन्तर्निहित है। ज्ञान और कर्म दोनों के पारस्परिक प्रकाश की संज्ञा संस्कृति है। भूमि पर बसने वाले जन ने ज्ञान के क्षेत्र में जो सोचा है और कर्म के क्षेत्र में जो रचा है, इन दोनों के रूप में हमें राष्ट्रीय संस्कृति के दर्शन मिलते हैं। जीवन के विकास की युक्ति ही संस्कृति के रूप में प्रकट होती है। प्रत्येक जाति अपनी–अपनी विशेषताओं के साथ इस युक्ति को निश्चित करती है और उससे प्रेरित संस्कृति का विकास करती है। इस दृष्टि से प्रत्येक जन की अपनी–अपनी भावना के अनुसार पृथक–पृथक संस्कृतियाँ राष्ट्र में विकसित होती हैं, परन्तु उन सबका मूल आधार पारस्परिक सहिष्णुता और समन्वय पर निर्भर है।

जंगल में जिस प्रकार अनेक लता, वृक्ष और वनस्पति अपने अदम्य भाव से उठते हुए पारस्परिक सम्मिलन से अविरोधी स्थिति प्राप्त करते हैं उसी प्रकार राष्ट्रीय जन अपनी संस्कृतियों के द्वारा एक–दूसरे के साथ मिलकर राष्ट्र में रहते हैं। जिस प्रकार जल के अनेक प्रवाह नदियों के रूप में मिलकर समुद्र में एकरूपता प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रीय जीवन की अनेक विधियाँ राष्ट्रीय संस्कृति में समन्वय प्राप्त करती हैं समन्वययुक्त जीवन ही राष्ट्र का सुखदायी रूप है।

साहित्य, कला, नृत्य, गीत, आमोद–प्रमोद अनेक रूपों में राष्ट्रीय जन अपने–अपने मानसिक भावों को प्रकट करते हैं। आत्मा का जो विश्व–व्यापी आनन्द भाव है वह इन विविध रूपों से साकार होता है। यद्यपि बाह्य रूप की दृष्टि से संस्कृति के ये बाहरी लक्षण अनेक दिखाई पड़ते हैं किन्तु आंतरिक आनन्द की दृष्टि से उनमें एकसूत्रता है। जो व्यक्ति सहृदय है, वह प्रत्येक संस्कृति के आनंद–पक्ष को स्वीकार करता है और उससे आनन्दित होता है। इस प्रकार की उदार भावना ही विविध जनों से बने हुए राष्ट्र के लिए स्वास्थ्यकर है।

गाँवों और जंगलों में स्वच्छन्द जन्म लेने वाले लोकगीतों में, तारों के नीचे विकसित लोक–कथाओं में संस्कृति का अमित भण्डार भरा हुआ है, जहाँ से आनन्द की भरपूर मात्रा प्राप्त हो सकती है। राष्ट्रीय संस्कृति के परिचय–काल में उन सबका स्वागत करने की आवश्यकता है।

पूर्वजों ने चरित्र और धर्म–विज्ञान, साहित्य–कला और संस्कृति के क्षेत्र में जो कुछ भी पराक्रम किया है उस सारे विस्तार को हम गौरव के साथ धारण करते हैं और उसके तेज को अपने भावी जीवन में साक्षात् देखना चाहते हैं। यही राष्ट्र–संवर्धन का स्वाभाविक प्रकार है। जहाँ अतीत वर्तमान के लिये भाररूप नहीं है, जहाँ भूत वर्तमान को जकड़ रखना नहीं चाहता वरन् अपने वरदान से पुष्ट करके उसे आगे बढ़ाना चाहता है, उस राष्ट्र का हम स्वागत करते हैं।

शब्दार्थ –

निर्मूल – जड़ रहित, आधारहीन

परिवर्धित – अच्छी तरह बढ़ाया हुआ

नग – पर्वत

कबन्ध – धड़

सौरभ – सुगन्ध

समन्वय – तालमेल

अदम्य – जिसका दमन न हो सके

पार्थिव – पृथ्वी सम्बन्धी, सांसारिक

अभ्युदय – उन्नति, उत्थान

तादात्म्य–अभेद मिश्रण या सम्बन्ध, अभिन्नता

विटप – वृक्ष

ध्येय –ध्यान देने योग्य उद्देश्य

भित्ति – दीवार

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सच्चे अर्थों में सम्पूर्ण राष्ट्रीय विचार धाराओं की जननी कौन है ?

   (अ) पृथ्वी (ब) संस्कृति

   (स) जन (द) राष्ट्र ( )

2. जन का मस्तिष्क है ?

   (अ) नदी (ब) पर्वत

   (स) राष्ट्र (द) संस्कृति ( )

3. संस्कृति का अमित भण्डार भरा हुआ है –

   (अ) लोकगीतों व लोककथाओं में (ब) प्राकृतिक सौन्दर्य में

   (स) जन–मानस में (द) धर्म व विज्ञान में ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. पृथ्वी वसुन्धरा क्यों कहलाती है ?
2. जागरणशील राष्ट्र के लिए आनन्दप्रद कर्त्तव्य किसे माना है ?
3. सैंकड़ों वर्षों से शून्य और अन्धकार भरे जीवन के क्षेत्रों में उजाला कब दिखाई देगा ?

4. राष्ट्र की वृद्धि कैसे संभव है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मेघ हमारे अध्ययन की परिधि में क्यों आने चाहिएं?
2. हमारी राष्ट्रीयता बलवती कैसे हो सकेगी?
3. पृथ्वी के वरदानों में भाग पाने का अधिकार किसे व क्यों है ?
4. ''जीवन के विटप का पुष्प संस्कृति है'' से क्या अभिप्राय है ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''राष्ट्रीयता की जड़ें पृथ्वी में जितनी गहरी होंगी, उतना ही राष्ट्रीय भावों का अंकुर पल्लवित होगा'', के आधार पर राष्ट्रीयता के विकास में जन के भूमि के प्रति क्या कर्त्तव्य हैं ?
2. ''पृथक–पृथक संस्कृतियाँ राष्ट्र में विकसित होती हैं, परन्तु उन सबका मूल आधार पारस्परिक सहिष्णुता और समन्वय पर निर्भर है'' के आधार पर भारतीय संस्कृति की विशेषताएं बताइए ?
3. राष्ट्र के स्वरूप की विवेचना कर उसके प्रमुख तत्वों को समझाइए ?

निर्वासित

—सूर्यबाला

लेखक—परिचय

हिन्दी कहानी की सशक्त हस्ताक्षर सूर्यबाला का जन्म 25 अक्टूबर 1943 को उत्तरप्रदेश के बनारस में हुआ था। इनके आज तक 150 से ज्यादा उपन्यास—कहानियाँ और व्यंग्य आदि प्रकाशित हो चुके हैं। सृजन की श्रृंखला का प्रथम पुष्प "मेरे सन्धि पत्र (उपन्यास) सन्1975 ई. में प्रकाशित हुआ, जो साहित्य के सुधि पाठकों में काफी चर्चित रहा।

साहित्यिक रचना संसार का सुपरिचित नाम है सूर्यबाला, इनकी अधिसंख्य कृतियाँ कोमल एवं नाजुक अनुभूतियों को निगलने वाली क्रूर व्यावसायिकता पर चिंता प्रकट करती है। जीवन की विविध परिस्थितियों को परखने की कथा लेखिका के पास गाँधीवादी दृष्टि है। समाजगत सकारात्मक परिवर्तन तथा जीवन मूल्यों की श्रेष्ठता हेतु विरोध और विद्रोह के स्थान पर विवेक को महत्त्व देती है। लेखिका के मतानुसार तेजी से बदल रहे समय में नारी अस्मिता एक चुनौती भरा सवाल है, लेकिन उससे भी बडी चुनौती यह है कि हम विश्व को बचा ले जायें। प्रकृति और परम्पराओं से मिले मूल्यों को अगर हमने खारिज कर दिया तो हम खुद ही खोखले हो जायेंगे।

प्रमुख रचनाएँ

कहानी संग्रहः— कात्यायनी संवाद, मुंडेर पर, एक इन्द्रधनुष, दिशाहीन, साँझवाती, गृह प्रवेश, थाली भर चाँद, मानुष गंध।

उपन्यासः— सुबह के इंतजार तक, अग्निपंखी, यामिनीकथा, दीक्षान्त

व्यंग्यः— धृतराष्ट्र टाइम्स, झगड़ा निपटारक दफ्तर, अजगर करे ना चाकरी

धारावाहिकः— पलाश के फूल, न किन्नी ना, सौदागर दुआओं के, एक इन्द्रधनुष, जुबैदा के नाम, निर्वासित, रेस।

सम्मान और पुरस्कारः— साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट लेखन के लिये कथाकार सूर्यबाला को कई पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए हैः—

घनश्याम दास पुरस्कार, सराफ पुरस्कार, प्रियदर्शिनी पुरस्कार तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मुम्बई विद्यापीठ आरोही, अखिल भारतीय कायस्थ महासभा, सतपुड़ा संस्कृति परिषद् आदि कई संस्थाओं से सम्मानित।

पाठ—परिचय

प्रस्तुत कहानी 'निर्वासित' वानप्रस्थी जीवन जी रहे अपने घर को त्याग बड़े बेटे के घर पर रहने वाले दम्पत्ति की दर्द भरी कहानी है। स्वयं की स्वतंत्रता को अनिच्छापूर्वक छोड़ अपने पुत्र और पुत्रवधु की

इच्छा, भावना, रूचि एवं विचारों के अनुसार स्वयं को ढालना कितना दमघोंटू और पीडादायक होता है, एक–दूसरे के पूरक पति–पत्नी जिनका जीवन और जीवन के सुख–दुःख भी सांझा थे, दोनों को अलग कर दोनों बेटों के बीच बाँटा जाना बाण–बिद्ध क्रौंच–युगल की मौन–मूक पीड़ा की मर्मान्तक अभिव्यक्ति था। आधुनिकता बोध को जीते बेटों के मध्य वृद्ध दम्पत्ति के निर्वासित जीवन की घायल छटपटाती संवेदना को उकेरना कथाकार का मूल उद्‌देश्य है।

कहानी कथ्य और शिल्प में बेजोड़ है, भाषा सहज सरल तथा भाव सम्प्रेषण के अनुकूल है। कहानी का अंत करूणायुक्त एवं दुखांत है।

****

झुलसाती लू के साथ दुहरे होते युक्लिप्ट्स और केजुरीना के पेड़, दरकती, गुलाब की क्यारियाँ और सूखे पत्तों से ढका लॉन.... इस मौसम में वैसे भी मन एक अजीब–सी ऊब, बल्कि मनहूसियत से भर जाता है। कमरे से बरामदा, बरामदे से खिड़की और खिड़की से आती वही सूखी हरहराती हवा ''उन्होंने खिड़की का शीशा बन्द कर दिया, परदे खिसका दिये, फिर थोड़ी देर शीशे से टिकी खड़ी रही'' सब कुछ उजाड़, वीरान। माहौल की मनहूसियत से उदासी और भी गहरा गयी। और ऐसी दोपहर एक दो हो तो काटी भी जा सकती है, पर हफ्तों, महीनों, सालों.....

बहुत पहले भी जेठ–बैसाख की दुपहरी तो ऐसी ही उजाड़ हुआ करती थी, पर तब इतनी उदास और सपाट कभी नहीं लगी, या यों कहे कि इतना वक्त ही किसे रहता था! बच्चे छोटे थे, सारा समय उनके पीछे–पीछे ही भाग–दौड़ चीख–पुकार में बीत जाता। पलकें दो घड़ी झपक लेने को तरस जाती। बच्चों को सुलाने के लिये 'ढ़ाका, बंगाला कौआ' की कहानी कहते–कहते वह खुद सो जाती और छोटा धीरू बडे भाई के इशारे पर सिर के नीचे पडी माँ की कोहनी खिसका कर दबे पाँव तपती दुपहरी में खिसक जाता। पता तब चलता, जब महरी उन्हें मड़ैया पर फालसे तोड़ते देख कर कान पकड़ कर उनके सामने हाजिर कर देती.....तब तक बेर बिसहने लगती। आँगन और बरामदे में पानी का छिड़काव, सुराही, झंझर भरना और बाबूजी के लिये सौंफ, कालीमिर्च की ठंडाई पीसना.....

वह पोथी निकाल कर चश्मा टटोलने लगी। एक–दो पाठ गुनगुनाये, थोड़ी देर बीती, उठी, लू के थपेड़ों में ही अलगनी पर सूखती अपनी साड़ी और जंपर उठा लायी, उन्हें धीमे–धीमे तह करती रही। तह करके रैक पर रख दिया। अब\ बटुए से माला निकाली और चुपचाप बिस्तर पर बैठी फेरती रही। बैठे–बैठे कमर दुखती–सी लगी, तो लेट गयी, जाने कब झपकी सी आ गयी। थोड़ी देर में ही चौंक कर आँखें खुल गयी। लगा, काफी दुपहरी कट चुकी होगी। चार तो जरूर बजते होंगे। उठना चाहिए। बेटे–बहू के कमरे के दरवाजे उढ़के हुए थे। कूलर की घर–र–र सारे घर की खामोशी को मथ रही थी। दबे पाँव बैठक की ओर आयी। आरामकुर्सी पर उठंगे–उठंगे वह सो रहे थे। एक किताब हाथों के सहारे पेट पर टिकी थी, चश्मा थोड़ा नाक के नीचे खिसक आया था। उन्होंने चुपचाप किताब मेज पर रख दी, चश्मा उतारने लगी कि उनकी नींद खुल गयी–तुम सोयी नहीं क्या\

–नहीं, थोड़ी झपकी आ गयी थी, लेकिन गर्मी बहुत है, नींद खुल गयी। थोड़ा ठहर कर पूछा–जगा दिया तुम्हें।

—नहीं, मैं भी पढ़ते—पढ़ते यों ही झपक गया था। सचमुच बडी गर्मी है।

—शरबत लाऊँ बना कर, पियोगे?

—शरबत! नहीं, नहीं.....अच्छा ऐसा करो। चाय बना दो। तब तक राजेन और बहू भी जग जायेंगे।

वह दबे पांव ही रसोई में गयी। स्टोव में तेल नहीं था। बोतल से डालने लगीं, तो जाने कैसे बोतल फिसल गयी। चारों ओर मिट्टी का तेल फैल गया। आवाज सुनकर 'कौन है?कहती रीमा रसोई तक चली आयी। वह अपराधिनी—सी दयनीय बनी जल्दी—जल्दी कपड़े से सुखा रही थी।

—ओह! माँजी, आप?

उन्होंने खिसियानी—सी हँसी हँसते हुए कहा—मन में आया, जरा चाय बना दूँ''तुम्हारे बाबूजी भी जग गये थे। सोचा, जब तक बनेगी, तुम दोनों भी जग जाओगे तब तक......

—ओह, इतनी दोपहर में चाय कौन पियेगा! जरा शाम तो होने देती। फिर जमना आकर बनाता ही है, आप बेकार ही तकलीफ करने लगती है न!

—चार से ऊपर हो रहे थे, मन भी उचाट था। वह स्वर को धीमा करते हुए बोली।

—खूब! तो आप चाय बनाने लगी.......! उसने केवल हँस कर कहा था, वह भी बुरा लगने लायक कोई शब्द नहीं, पर उनका मन रोने—रोने—सा होने लगा।

कमरे में राजेन शायद पूछ रहा है। बहू फिक्क—से हँसती हुई उन्हें बता रही है— माँजी है! जाने इतनी दोपहर में उन्हें चाय बनाने की क्या सूझी...... और बुढ़ापे में हाथ तो चलता नहीं, बोतल लुढ़क गयी मिट्टी के तेल की.....!

—तो उन्हें समझा दो और अगर चाय जल्दी पीना चाहती हो, तो जमना को कह दो, जल्दी आ जाया करें।

—लो, तुम समझते हो, मैं उन्हें किचेन में काम करने को कहती हूँ! उनके जाने से तो काम बढ़ जाता है, पर ये बूढ़े लोग''

बूढ़े लोग! उनकी आँखें भरभरा आयी। अभी तो यहाँ आने के पहले तक सारा काम ही सम्भालती थी'' ''बाबूजी का नाश्ता, खाना, कपड़े धोना तक, और बाबूजी ने कभी शिकायत नहीं की कि अब तुमसे काम ठीक नहीं होता। दाल—सब्जी में भी न कभी पानी ज्यादा न नमक कम, जमना की तरह। सोचा, चलकर बैठक में उन्हीं के पास बैठूं। चाय बनाने का उत्साह तो समाप्त हो गया था। बैठक की ओर बढ़ी कि कानों में राजेन और बहू के खिलखिलाने की आवाज आयी। वह झेंप कर पूजा वाले कमरे की ओर बढ़ गयी। जाते—जाते राजेन का धीमा स्वर कानों में पड़ा—प्रेम—शेम कुछ नहीं, अकेली बोर फील करती होंगी, तो बाबूजी के पास जाकर बैठ जाती होंगी।

—वाह, जैसे मैंने देखा न हो! माँजी के मना करने पर भी पिताजी अपने कपड़े खुद धो लेते हैं। चाय की खाली प्याली उनके माँगने पर भी किचेन में रख आते हैं। दिन में अधिक नहीं तो चार—पाँच बार दवा के लिये पूछते हैं—खायी कि नहीं? खतम हो गयी हो, तो ले आऊँ, उनका बस चले, तो''

बात एक भरपूर कटाक्ष पर समाप्त हो गयी।

चाय की खाली प्याली रख कर वह चुपचाप सिर झुकाये बैठक की ओर मुड़ गये। सोचा, जमना से माँजी के बारे में पूछें फिर रूक गये, लौट कर उसी मुद्रा में झुके हुए अखबार लेकर बैठ गये। इतना अखबार उन्होंने जीवन में कभी नहीं पढ़ा था जितना पिछले ढ़ाई सालों में। रिटायर होने के डेढ़ साल बाद ही यहाँ आ गये थे दोनों डेढ़ वर्षों तक सौ रूपये महीने भेजने के बाद अचानक राजेन का पत्र मिला था, उसमें उसने अकेले उतनी दूर रहते माँ—बाबूजी को अपने पास रहने के लिये बुलाया था, मकान को किराये पर उठा देने की बात भी लिखी थी, वैसे किराये वाली बात गौण थी, मुख्य तो यही थी कि मां को अकेले सारा काम करना पड़ता हैं, यहाँ हम लोगों को चिन्ता बनी रहती है, इतनी दूर से समय कुसमय पहुँचना भी मुश्किल रहता है, सरकारी नौकरी ठहरी.....

अड़ोस—पड़ोस वालों ने भी कहा—ठीक ही लिखा है, अब यह उम्र आराम की है। यहाँ तो सौदा—सुलुफ और जो कुछ थोड़ा बहुत राशन लगता है, बाबूजी खुद ही लाते हैं। वहाँ तो बेटा इतना बड़ा अफसर है, हर काम के लिये चपरासी, अरदली हाथ बांधे खड़े रहेंगे। बहू भी सुशील है। इतनी बार यहाँ आयी, कभी ऊँचे बोल नहीं सुने। राज करोगी, राजेन की माँ! अफसरों की पुलाव—कचौडी से नीचे बात ही नहीं होती! और फिर सबसे बडी बात कि उसे इतना ख्याल है, नहीं तो आजकल के बेटे।

लेकिन मुँहफट बूढ़ी दरोगानी ने कहा था—सब कचौड़ी—पकौड़ा एक तरफ और अपना सुराज एक तरफ! वहाँ तो अफसरी कायदे से रहना होगा। लेकिन हाँ, आराम तो होगा ही, और फिर बुलाने पर न जाना भी।

इन दोनों ने खुद भी साथ—साथ और अलग—अलग बहुत कुछ सोचा था, घर छोड़ने की बात से दोनों के मन में एक—सी हूक उठी थी, पर तर्क सभी अकाट्य थे, सचमुच बहू का स्वभाव परखा हुआ है और फिर परतंत्रता कैसी?

हिचक कैसी?अपनी ही कोख में जनमी औलाद है, उन्हें तो चार बात भी कह दें, तो जबान नहीं खोल सकते हैं। लाख अफसर हों, माँ—बाप के सामने बच्चे ही हैं।

—रिजर्वेशन हो गया। आँगन में आकर बोले थे, तो जैसे किसी ने कलेजे पर हथौड़ा मारा हो। सामान बँधने लगे, चीजे बँटने लगी, सिल—बट्टे, सूप—चलनी, अलगनी, अलमारियाँ, कद्दू—कस, जन्माष्टमी पर बजने वाले घंटा—घड़ियाल, कृष्ण—जन्म के झूले, रामनवमी पर पूजा जाने वाला तुलसी का चौरा'''........ कुछ नहीं ले जाना है। राजेन ने लिखा है—अम्मा से कहिए, सब कुछ न उठा लायें, यहां उन्हें किसी बात की तकलीफ न होगी। सचमुच छोड़ दिया सब कुछ। रामेश्वरम् से लाया, तीर्थ का तांबे का लोटा भर धीमें से रख लिया, घंटा—घड़ियाल और कन्हैयाजी का पालना, बस............ बाबूजी ने भी देख कर मना नहीं किया। आखिर उनका भी तो कितना कुछ जुड़ा था इस लोटे और पालने के साथ। कैसे वे दोनों साथ—साथ नहाये थे और भगवान के सामने हाथ जोड़ कर, जो कुछ उसने भरापूरा दिया था, उसके लिये गद्गद् स्वर में कृतज्ञता अर्पित की थी। रामेश्वरम् जाने के दो महीने पहले ही छोटे रनधीर की नौकरी लगी थी।

स्टेशन पर राजेन खुद ही आया था, दो चपरासियों के साथ। प्लेटफार्म पर फैले थैले, बंडलों, गठरियों को देखकर एक बार तो खीझा, फिर परेशान—सा संयत स्वर में बोला— आपको तो मना किया था बाबूजी अम्मा को तो समझ नहीं, पर आप तो मना कर सकते थे। सौ बरस पुरानी सड़ी—गली चीजों का

भला क्या होगा यहाँ!

वह झेंप कर हँसे थे–अरे भाई, क्या बताऊँ! इन औरतों को तो तुम जानते हो ही, इतना मना किया, पर अब समझा तक ही तो सकता हूँ। खैर, एक तरफ कहीं रख दी जायेगी, हें–हें–हें।

चपरासी ने उनका कमरा बताया। पर सामान खुलने लगा तो बहू ने दाँतों तले उंगली दबा ली–ओह माँजी, नौकर देखेंगे, तो क्या कहेंगे! इसके पहले यहाँ जितने साहब आये, सब अंग्रेज या ऐंग्लो–इंडियन थे। वह हकबकी टुकुर–टुकुर देखती रही। रीमा, जल्दी से रामेश्वरम् वाला लौटा छुपा आयी। वह उसे मना न कर पायी।

भाई वाह, माँजी तो चलता–फिरता म्यूजियम साथ लायी हैं! रीमा ने हँस कर फिकरा कसा।

पूरी–की–पूरी गठरियाँ टाँड पर चढ़ा दी गयी, सो भी स्टोर वाले पर कि कोई उतार भी न सके। दो–एक बार उनके बारे मे पूछ कर वह चुप हो गयी थी। तभी उन्हें लगा था, जान–बूझ कर उन्होंने घर पर जितना कुछ छोड़ा था। अनजाने उससे कहीं ज्यादा छूट गया है, जो जीवन भर शायद न मिल सकेगा।

बाबूजी शायद ज्यादा साहसी थे, अड़ोस–पड़ोस में मन रमाने की कोशिश करते, सुबह–सुबह छड़ी लेकर घूमने निकल जाते। समय मिलता, तो माँजी को बुलंद आवाज में बुलाते–क्या कर रही हो ? अब यहाँ तुम्हें कौनसे काम का बहाना हैं, चलो पाठ किया जाये।

एकाध बार शुरू में उन्होंने राजेन को भी अधिकार भरे स्वर में बुलाने की कोशिश की, पर राजेन ने एक अजीब बड़प्पन भरी हँसी हँस कर टाल दिया–आप कीजिए, मुझे तो अभी देखिए मीटिंग में जाना है, फिर मेरे लिए बहुत समय पड़ा है पाठ–पूजा के लिए।

एक दिन बहू ने बडे मीठे ढ़ंग से आकर समझाया–माँजी, जरा बाबूजी से कहिएगा, इतनी जोर से पाठ न किया करें। वहाँ घर की बात और थी, यहाँ सब आफिसर्स ही रहते हैं, और फिर भगवान तो सब जगह है, देखिए न, कबीरदासजी ने भी कहा है–ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय। आप और बाबूजी मन–मन में पूजा कर लिया कीजिए, ये गुस्सा होते हैं।

वह बहू के दर्शन–ज्ञान और अकाट्य तर्क के सामन निरूत्तर थी। पूरी आज्ञाकारिता के साथ उन्होंने उसे आश्वासन दिया कि भविष्य में वे दोनों इसका ध्यान रखेंगे। अकेले में स्वयं को भी समझाया, ठीक तो कहती है, इन लोगों को तो कोई उज्र नहीं, पर आने–जाने वाले जरूर हँसते होंगे। कहा भी है, जैसा देश, वैसा भेस। मन और भी हलका हो गया, जब देखा, राजेन पिताजी के साथ लॉन में चाय पी रहा है और घर–जायदाद वगैरह के बारे में सलाह ले रहा है।

चाय खत्म कर उठते–उठते राजेन ने जरा झिझकते हुए नपे–तुले स्वर में कहा–बाबूजी, शाम को मेरे दोस्त वगैरह आते हैं न, तो प्लीज आप अन्दर आ जाया कीजिए। असल में उन्हें ड्रिंक्स वगैरा चाहिए होती है, स्मोक भी करना चाहते हैं। आप बुजुर्ग ठहरे, आपके सामने झिझकते हैं! और जल्दी–जल्दी उनके चेहरे पर आयी प्रतिक्रिया देखे बिना जमना को आवाज दी–कार साफ करो। फौरन, बाहर जाना है।

–माँजी, हम बाहर जा रहे हैं। जमना बेबी को घुमा कर लौटे, तो दूध दिलवा देंगी। बस, खाना हम बाहर ही खायेंगे।

कार सर्र–से जा चुकी थी। थोड़ी देर वह उड़ती धूल को देखती रही, फिर एकदम अपने में लौट आयी। बाबूजी उसी तरह लॉन में सिर झुकाये बैठे थे।

–वे लोग तो बाहर गये, सुनने पर भी चेहरे पर कोई भाव नहीं आया। गोद में पड़ी किताब उलटते–पलटते रहे।

–कौनसी किताब है.......पोथी है?

–नहीं रामतीर्थ–ग्रन्थावली।

किसी सुनसान घाटी में जैसे कोई अस्फुट ध्वनि गूँजी हो और उसके रेशे–रेशे चारों तरफ बिखर गये हों, ऐसे ही उन दिनों के अहसासों में एक साथ कुछ बिखरा हुआ था, थोड़ी देर चुप रही, फिर एकदम सहज होते हुए बोली–क्या बनाऊँ.......कटहल बनाती हूँ आज, तुम्हें बहुत पसन्द है।

–न, न, अब पचता नहीं।

–तो?बस खीर और सादी सब्जी?

खीर?नहीं जब बहू और राजेन रहें, तब बनाना।

शब्द थोड़े–से थे, पर अर्थ गहरे और विस्तृत। वह चुप हो गयी। घर पर थे, तो हर चौथे–पाँचवें हाथ की बनी मोटी रोटियाँ और आलू–बैंगन की सब्जी, बहुत खुश होते तो मखाने की खीर, बाद में दो रोटियाँ अपने लिए भी उलट उसी थाली में बैठ जाती। तब तक वह हाथ धो रहे होते।

शाम वैसी ही गुमसुमी–सी बीती, अँधेरा होने पर मन में घुमड़ता कुछ और भी गहरा आया। एकाएक उनके पास जा कर खड़ी हो गयी और अटकती आवाज में कह गयीं–सालों हो गये, एक बार घर चलते न!

–घर! उनकी आँखों में एक चमक आयी और बुझ गयी–वह तो पूरा किराये पर उठा दिया है! क्यों?क्या बात है?

–बात?बात कुछ नहीं, बहुत दिनों से घर छूटा ही है, बस?

–लेकिन कुछ दिनों को चलने से फायदा......?

–हाँ, एक गहरी उसाँस उस खामोशी में उतरती चली गयी–क्या फायदा......।

सुबह–सुबह ही रनधीर के आने का तार मिला था। दस बजे राजेन उसे स्टेशन से लेकर लौटा। पैर छूने के लिए माँ के घुटने तक हाथ जरा झुका कर हँसते हुए बोला–अच्छी तो हो, अम्मा! चलो भैया की सरकारी नौकरी में हुकुम चलाने का उनका काफी भार तुमने हलका कर दिया होगा।

वह जोर से हो–हो करके हँसते हुए बताने लगे–अरे, पूछो मत! दिन भर लोगों की भीड़ घेरे रहती है। साहब–साहब कहते जबान सूखती है। उनके सामने तो जमना और चपरासियों तक की अकड़ देखने लायक होती है। एक तो आजकल छुट्टी गया है, फिर भी दो–चार दिन भर ......वह उत्साह में भरकर बोले जा रहे थे।

राजेन सिगरेट की राख झाड़ते हुए भाई से कह रहा था–सब ऊपरी ठाट है, अन्दर ठाले रहते हैं।

अब तो असिस्टिंट भी पूरे घाघ मिलते हैं। कड़ी नजर रखते हैं कस्टमर्स पर। सरकारी नौकरी में तो बस छोटे ओहदों पर फायदा है। ऊपरी ठाट और अन्दरूनी हालत में कितना फर्क है, तुम सोच भी नहीं सकते। अब यही देखो। बेबी को कुछ सालों बाद नैनीताल कॉन्वेन्ट में डालना चाहता था, पर दम ही नहीं।

भोजन के बाद रनधीर जाने लगा, तो राजेन ने रोका–बैठो, बातें करेंगेः हम देर से ही सोते हैं। फिर थोड़ी देर रूक कर, उन दोनों को देखकर ठंडे लहजे में बोला– आप लोग भी चाहें तो बैठें, बाबूजी!

उन्होंने तुरंत उठते हुए कहा–नहीं, नहीं तुम सब बातें करो। आज काफी थकावट महसूस हो रही है। एक झूठी जम्हाई लेकर वह उठ आये, पीछे–पीछे वह भी आ गयी। दोनों को एक साथ लगा, शेष तीनों ने एक राहत–भरी मुक्ति महसूस की है।

बरामदे से चुपचाप गुजरते हुए वह सोच रही थी, नींद तो अभी घंटों नहीं आयेगी, तब तक क्या करेंगी?क्यों न बाबूजी को भी कमरे में ही बुला लें, थोडी देर बैठें, फिर चले जायेंगे। उन्हें मुड़ते देख कर टोका–अभी सोओगे?

–नहीं तो।

–तो बैठो न कमरे में ही।

–कमरे में? नहीं, चलता हूँ......रात काफी हो गयी है। थक भी गया हूँ। इस समय कमरे में बैठना ... . चलूँ, जरा अखबार आज ठीक से नहीं पढ़ा।

सब कुछ कहा–अनकहा, जाना–समझा था, फिर भी यह ऐसा प्रस्ताव रख गयी थी बाबूजी के सामने। अपनी गलती तुरंत समझ में आ गयी। बहू–बेटों के पास से थकान का बहाना करके आना और फिर घुल–घुल कर बतियाना...... ।

एक दिन बहू राजेन से खिलखिलाती कह रही थी–पिताजी तो माँजी को बिलकुल मॉडर्न बनाने पर तुल गये हैं! आज उन्हें शिमला–पैक्ट के फायदे–नुकसान समझा रहे थे!

–तो आपको क्या ऑब्जेक्शन है?राजेन ने मुसकरा कर पूछा।

–ऑब्जेक्शन? खी–खी–खी–खी! मुझे तो लगता है, सच जैसे थिएटर देख रही हूँ! अभी देखो, नाउ शी इज परफेक्टली ऑलराइट, लेकिन पिताजी को चैन कहाँ? जब भी मौका मिलेगा–कमजोरी लगती हो तो ताकत वाली दवा एकाध शीशी और ला दूँ......घबराहट के लिए वह कौन–सी होमियोपैथी की दवा बतायी थी डाक्टर बैनर्जी ने? माँजी निहाल हो जाती है। फिर भौहों की कमान चढ़ाती राजेन से बोली–सच, तुमने अपने पिताजी से कुछ नहीं सीखा'''''कुछ नहीं!

–शैतान की बच्ची.......! राजेन एक प्यार–भरी चपत लगा कर मुसकरा पड़ा।

एक–दो दिन बाद डाक्टर के यहाँ जाते समय जब उन्होंने तबीयत का हाल पूछा, वह एकदम चिड़चिड़ा पड़ी उन पर। स्तब्ध–से अपलक देखते रहे उन्हें और चुपचाप चले गये। वह लेटी आँखों पर कुहनी रखे रोती रही...... आखिर उनका क्या कुसूर था, क्यों चिड़चिड़ाई उन पर!

काफी रात गये उनकी 'गुड नाइट' के शब्द कानों में पड़े। तब तक वे दोनों अलग–अलग पूरी तरह जगे हुए थे। बीच में माला जपते समय या रामतीर्थ–ग्रन्थावली पढ़ते समय एकाध झपकी आयी भी, तो उन

तीनों के ठहाकों और खिलखिलाहटों से उचट गयी।

सुबह उठने के साथ ही रनधीर ने हँसना और सबको हँसाना शुरू किया। यह उसकी बचपन की आदत थी। राजेन की तरह गम्भीर नहीं, हमेशा का चिबिल्ला था। इस समय भी कभी बेबी के हाथ से डॉल छीन कर उसे रूला रहा था। कभी बाबूजी का चश्मा लगा कर पढ़ने की कोशिश कर रहा था, कभी जब वह भाभी को छुप कर देखने गया था, उसके मनोरंजक प्रसंग सुना रहा था। कोई नहीं मिलता, तो जमना से ही उसकी शादी की बाबत जानकारी ले रहा था।

–जमना, सुन, तू हनीमून पर जरूर जाना। खर्च की सारी जिम्मेदारी मेरी।

–जमना झेंपता–शर्माता ट्रे उठाकर चला जाता। वह पूजा कर रही थीं, तब भी डाइनिंग–रूम से आते ठहाके उन्हें कुलबुला जाते, विशेषकर जब बेटों के साथ उनकी भी मुक्त हँसी मिली होती। पूजा करते हुए भी मन उन्हीं लोगों पर था। वह ज्यादा खुश और मुक्त लग रहे थे, बेटों की बातों में खूब रस ले रहे थे। राजेन और रनधीर के मुँह से कई बार 'बाबूजी' संबोधन सुन उनका मन पुलकित हो उठा था। हाथ की माला सालों पहले की परिक्रमा करने लगी थी, जब स्कूल से टीम जीत कर आने पर दोनों खेल की बातें बताते–बताते पिता को निहाल कर देते और वह प्रसन्नमन कहते–शाबास मेरे शेरों! फिर ठहाके थम गये। सब शान्त हो गया। राजेन ऑफिस चला गया। काफी देर बाद वह कमरे में आये, तो मुसकरा दी–आज तो बड़े दिन बाद बेटों से ठट्ठे करते सुना तुम्हें!

उन्होंने जैसे सुना न हो, ऐसे स्थिर दृष्टि से उन्हें देखा, फिर एक–एक शब्द पर रुकते हुए खिड़की के बाहर देखते कह गये–सुनो, मैं जा रहा हूँ...... छोटे के साथ।

–कब? एक अप्रत्याशित प्रतिक्रिया उभरी–कितने दिनों के लिए?

–कल। वहीं रहने के लिए, उसके साथ ....

भयाक्रान्त–सी वह एकदम से पूछ बैठी–क्यों?

लगा, यह सवाल एक बड़ी चट्टान की तरह उन दोनों पर भर–भरा कर गिर पड़ा हो और उनके समेत उनका सब कुछ चकनाचूर हो गया हो।

कठोर संयम से उन्होंने आवेगों की रास खींच ली–कुछ नहीं, यों ही............ काफी दिन तो हो गये यहाँ रहते। थोड़ा घूम–फिर आना चाहिए ....

–मुझे भी तो यहाँ रहते........! वह निरंतर असहाय–सी होती जा रही थी।

गले में बहुत कुछ गुटकते हुए धीमे–धीमे बोले–मैं आ जाऊँगा, तब तुम जाओगी।

फिर दोनों एकदम चुप, एक दूसरे को देखते रहे, जैसे आँखें पथरा कर किसी एक ही दिशा में टिक गयी हों। उन आँखों की अथाह कातरता में बस एक ही सवाल गहराता जा रहा था................ हमारा अपराध.. ....?

पहले वह ही सँभले–अब जब दो बेटे हैं, तो एक ही दोनों का खर्च उठाये, ठीक नहीं लगता न.......... ?है कि नहीं? ठीक ही सोचा दोनों ने, अभी यहाँ बेबी छोटी है, तुम यहाँ रहोगी। सात–आठ महीने बाद छोटी की डीलीवरी होगी........ फिर तुम वहाँ चली जाओगी छोटे के पास। मैं यहाँ........ तो चलूँ......... ऐं....... तुम जरा

मेरी कमीजें वगैरा.......।

थोड़ी देर बाद वह अखबार लिये फिर सामने खड़े थे—यही कहने आया था कि मेरी छड़ी रखना मत भूलना, जो हम हरिद्वार से लाये थे। जरा टहल आऊँ न! बस.......यही कहना था.....।

लेकिन वह कुछ कह नहीं सके थे। यूँ ही बस, कमरे के बीचों—बीच कुर्सी का सिरा पकड़े खड़े थे। काँपती उँगलियों में कस कर पकड़ा हुआ अखबार और आँखों में बाण—बिद्ध क्रौंच—युगल की मूक पीड़ा थी, जिसे देखकर किसी आदि कवि का कोमल हृदय करूणा की अथाह लहरियों में बह चला था।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमह शाश्वती महा..........

शब्दार्थ

मनहूसियत—अशुभ, बुरा, / माहौल—वातावरण, /मड़ैया—झौंपडी, कुटिया, /उढ़कना—भिड़ाना, किसी के सहारे टेकना, /उचाट—मन का न लगना, विरक्ति, /कुसमय—संकट का समय, बुरा समय, /अरदली—नौकर /सुराज—स्वराज, /उज्र—आपत्ति, ऐतराज, /कस्टमर—ग्राहक, स्तब्ध—जड़, स्थिर।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'निर्वासित' कहानी की कहानीकार है—

(क) दीपबाला (ख) वीरबाला

(ग) सूर्यबाला (घ) राजबाला ( )

2. 'निर्वासित' कहानी का अंत होता है—

(क) सुखांत (ख) दुखांत

(ग) प्रसादांत (घ) इनमें से कोई नहीं ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. माँ जी बच्चों को सुलाने के लिये कौनसी कहानी सुनाती थी?
2. 'निर्वासित' कहानी के प्रारम्भ की पंक्तियाँ कौनसे भावों को अभिव्यक्त करती हैं?
3. बाबूजी के दोनों बेटों के क्या नाम थे?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. बड़े बेटे राजेन के पास जाने को लेकर पड़ोसियों ने क्या कहा?
2. पड़ोसियों की राय के विपरीत बूढी दरोगानी ने क्या विचार व्यक्त किये?
3. 'निर्वासित' कहानी में निहित कहानीकार का उद्देश्य क्या है?लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. पठित कहानी के आधार पर 'निर्वासित कहानी की कथावस्तु अपने शब्दों में लिखिए।
2. 'निर्वासित कहानी के कथा शिल्प पर अपने विचार लिखिए।
3. वर्तमान सन्दर्भों में 'निर्वासित' कहानी की प्रासंगिकता सिद्ध कीजिए।
4. अपनों के मध्य वानप्रस्थ जीवन जीने वाले दम्पत्ति की पीड़ा, संत्रास तथा घुटन की करूण कहानी है 'निर्वासित'। पठित कहानी के आधार पर उक्त कथन को समझाइये।

हमारी पुण्य भूमि और इसका गौरव मय अतीत
(स्वामी विवकानंद के भाषण का अंश)

संकलित–एकनाथ रानाडे

लेखक–परिचय

भारत भूमि के पाद–प्रदेश में स्थित कन्याकुमारी का अभिषेक करती सागर त्रय की उतुंगलहरों के बीच साकार स्वामी विवेकानंद शिला–स्मारक विश्व–मानस को ज्ञान भक्ति, वैराग्य तथा प्राणी–सेवा का पावन संदेश वर्षों से प्रसारित कर रहा है। शिला स्मारक का स्मरण आते ही एक मनस्वी, सेवा–समर्पण की प्रतिमूर्ति तथा मूक व्यक्तित्व श्री एकनाथ रानाडे का नाम हमारी स्मृति में उभर आता है, जो स्वामी विवेकानन्द शिला स्मारक के सूत्रधार तथा शिल्पी रहे।

एकनाथ रानाडे का जन्म महाराष्ट्र के अमरावती जिले के टिटोली ग्राम में हुआ था। ग्रामीण पृष्ठ भूमि के कारण शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था नहीं होने से एकनाथ अपने अग्रज के पास अध्ययन के लिए नागपुर आ गये। यहाँ से माध्यमिक शिक्षा परीक्षा उत्तीर्ण करने के साथ संगठनात्मक कार्यों की ओर प्रवृत्त हुए। सन् 1936 में शिक्षा पूर्ण करके संगठन कार्य हेतु प्रवासी कार्यकर्ता बनकर मध्यप्रदेश में रहे, इसी अवधि में डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय (सागर विश्वविद्यालय) से तत्त्वज्ञान विषय में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। विभिन्न दायित्वों का निर्वहन करते हुये समाज और राष्ट्र की सेवार्थ जीवन के अंतिम क्षणों तक स्वयं को समर्पित रखा।

एकनाथ रानाडे कुशल संगठनकर्त्ता, प्रभावीवक्ता, योजनाकार, सत्याग्रही तथा स्वामी विवेकानंद शिला स्मारक के योजनाकार वास्तुविद् एवं निर्माता के रूप में जनमानस के केन्द्र में रहे हैं। आपके द्वारा स्वामी विवेकानंद के शिकागो प्रवास के भाषणों, प्रवचनों का संकलन 'उत्तिष्ठत! जाग्रत!!' में किया गया है, जिसके कई संस्करण भारतीय जनता के मन में अपना स्थान बना चुके हैं।

पाठ–परिचय

प्रस्तुत भाषण का अंश हमारी पुण्यभूमि और उसका गौरवमय अतीत एकनाथ रानाडे द्वारा संकलित तथा देवेन्द्र स्वरूप अग्रवाल द्वारा अनुवादित उत्तिष्ठत! जाग्रत!! में से लिया गया है। जिसमें पुण्यभूमि भारत का गौरवमय अतीत, आर्य जाति की अवधारणा, उसकी विश्लेषणात्मक मेधा तथा उसकी कालजयी अमृत संतानों का सौम्य परिचय दिया गया है। इस पुण्य भूमि ने सृष्टि की प्राचीनता से अर्वाचीनता के विराट कालखण्ड में ज्ञान, विज्ञान भौतिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में जो योगदान दिया है, वह विश्वमानवता के लिये अनुकरणीय है। पश्चिमी विचारों को जीती परमुखापेक्षिता तथा हीनता बोध से ग्रस्त भारतीय युवा पीढी के लिये सद्मार्ग तथा नवीन आत्मबोध की प्रेरणा देंगी। स्वामी जी के भाषण की भाषा काव्यमयी ओजयुक्त, प्रभावी, भावों की गंभीरता लिये गहन चिंतनयुक्त है।

यदि इस पृथ्वीतल पर कोई ऐसा देश है, जो मंगलमयी पुण्यभूमि कहलाने का अधिकारी है, ऐसा

देश, जहां संसार के समस्त जीवों को अपना कर्मफल भोगने के लिये आना ही है– ऐसा देश जहां ईश्वरोन्मुख प्रत्येक आत्मा का अपना अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने के लिये पहुँचना अनिवार्य है, ऐसा देश जहाँ मानवता ने ऋजुता, उदारता, शुचिता एवं शांति का चरमशिखर स्पर्श किया हो–तथा इन सबसे आगे बढ़कर भी जो देश अन्तर्दृष्टि एवं आध्यात्मिकता का घर हो–तो वह देश भारत ही है।

****

अतीत गाथा

भारत का प्राचीन इतिहास अलौकिक उद्यम एवं उनके बहुविध प्रदर्शन, असीम उत्साह,, विभिन्न शक्तियों की अप्रतिहत क्रिया और प्रतिक्रिया के समन्वय तथा इन सबसे परे एक देवतुल्य जाति के गंभीर चिंतन की अपूर्व गाथा है। यदि 'इतिहास' शब्द का अर्थ केवल राजे–रजवाड़ों की कथाओं से ही लिया जाये, यदि केवल समाज–जीवन के उस चित्रण को ही इतिहास माना जाये, जिसमें समय–समय पर होने वाले शासकों की कलुषित वासनाओं, उद्दण्डता और लोभवृत्ति का नग्न ताण्डव देख पड़ता हो, अथवा उन शासकों के अच्छे–बुरे कृत्यों तथा उनके तत्कालीन समाज पर परिणाम के विवेचन को ही 'इतिहास' की संज्ञा दी जाये–तो शायद भारत में ऐसा कोई इतिहास ग्रन्थ नहीं मिलेगा। किन्तु भारत के विशाल धार्मिक साहित्य, काव्य–सिन्धु, दर्शन–ग्रन्थों एवं विभिन्न शास्त्रों की प्रत्येक पंक्ति हमारे समक्ष विशिष्ट राजाओं की वंशावलियों एवं जीवन चरित्रों की अपेक्षा सहस्र गुना अधिक स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करती है, प्रगति उस महा अभियान के प्रत्येक चरण का जब सभ्यता के विहान के बहुत पूर्व एक विशाल मानव समूह ने भूख–प्यास से परिचालित, लोभ, मोह से प्रेरित, सौन्दर्यतृष्णा से आकर्षित होकर अनेक मार्गों और उपायों का आविष्कार कर पूर्णता की परमावस्था को प्राप्त कर लिया था। यद्यपि विपरीत परिस्थितियों के भीषण झंझावातों ने प्रकृति के विरूद्ध उनके युग–युगों तक संघर्ष के परिणामस्वरूप एकत्र हुई असंख्य जय–पताकाओं को जीर्ण–शीर्ण कर डाला और काल के थपेड़ों ने उन्हें जर्जर कर डाला, तथापि वे आज भी भारत के अतीत गौरव की गाथायें गा रही हैं।

आर्य जाति

आज यह जानने का हमारे पास कोई उपयुक्त साधन नहीं है कि यह जाति मध्य एशिया उत्तर योरप या उत्तरी ध्रुव प्रदेश से धीरे–धीरे आगे बढी और क्रमशः आगे बढते हुए अंत में इसने भारतवर्ष में बस कर उसे पवित्र बनाया अथवा भारत की यह पुण्य–भूमि ही इसका मूल स्थान रही है।

आज हमारे पास कोई भी ठोस आधार यह सब प्रमाणित करने के लिये नहीं है कि हमारे भारत के अन्दर अथवा बाहर बसी हुई इस विशाल जाति ने ही प्राकृतिक नियमों के अनुसार अपने मूल स्थान से निष्क्रमण कर कालान्तर में यूरोप एवं अन्य स्थानों पर अपने उपनिवेश बसाये अथवा इन लोगों का वर्ण श्वेत था या कृष्ण, उनकी आंखें नीली थी या काली उनके केश सुनहरे थे या काले। केवल संस्कृत भाषा की कतिपय योरोपीय भाषाओं से घनिष्टता का अकेला तथ्य आज हमारे पास है।

इस प्रकार इस अन्तिम निष्कर्ष पर पहुंचना भी सरल नहीं है, कि हम सभी वर्तमान भारतीय उस जाति के शुद्ध वंशज हैं, अथवा हमारी रगों में उनका कितना रक्त बह रहा है अथवा हममें कितनी ऐसी जातियाँ हैं–जिनमें उस रक्त का लेशमात्र भी है। कुछ भी हो, इन प्रश्नों का अन्तिम हल नहीं निकलता है तो

हमारी कोई विशेष हानि नहीं है।

परन्तु एक बात ध्यान में रखनी होगी कि जिस प्राचीन भारतीय जाति में सभ्यता की किरणें सर्वप्रथम उदित हुईं, जिसमें गहन चिन्तनशीलता ने स्वयं को अपनी पूर्ण आभा के साथ सर्वप्रथम प्रसारित किया, उस जाति के हजारों, लाखों पुत्र, उसी मेधा के अंशभूत–आज भी उन समस्त भावों एवं चिन्तन के उत्तराधिकारी के रूप में विद्यमान हैं।

नदी, पर्वत एवं समुद्रों को लांघकर, देश काल की बाधाओं को मानों नगण्य कर भारतीय चिन्तन का रक्त भूमण्डल पर रहने वाली अन्य जातियों की नसों में अनेक जाने–अनजाने स्पष्ट अनिर्वचनीय मार्गों से अब तक प्रवाहित हुआ है और आज भी हो रहा है। सम्भवतः विश्व की पुरातन ज्ञानराशि का बहुतांश हमारी देन है।

विश्लेषणात्मक मेधा

'नासतः सत् जायते!' निरस्तित्व में से अस्तित्व का जन्म नहीं हो सकता है।......... जिसका अस्तित्व है, उसका आधार निरस्तित्व नहीं हो सकता। शून्य में से ''कुछ'' सम्भव नहीं है। यह कार्य कारण सिद्धांत सर्व शक्तिमान है और देश कालातीत है। इस सिद्धान्त का ज्ञान उतना ही पुराना है जितनी आर्य जाति। सर्वप्रथम आर्यजाति के पुरातन ऋषि कवियों ने इसका गान किया, उसके दर्शनिकों ने इसका प्रतिपादन किया और उस आधार शिला का रूप दिया जिसके ऊपर आज भी सम्पूर्ण हिन्दू जीवन का प्रासाद खड़ा होता है।

एक अपूर्व जिज्ञासा लेकर इस जाति ने अपनी यात्रा आरम्भ की। किंतु शीघ्र ही वह एक निर्भीक विश्लेषण में परिणत हो गई। यद्यपि उनकी प्रारम्भिक कृतियों को देखकर लगता है मानों भावी किसी श्रेष्ठ कलाकार ने कांपते हाथों बनायी हो, तथापि शीघ्र ही उसने आश्चर्यजनक परिणाम दिखाये, उसकी कृतियों में अपूर्व सुघड़ता आ गयी और उसने एक अति वैज्ञानिक शास्त्र को जन्म दिया।

इस साहसी जाति ने अपनी यज्ञवेदियों की प्रत्येक ईंट को छान डाला, अपने शास्त्रों के प्रत्येक स्वर–अक्षर को छाना–बीना, परखा और जोड़ा, अपने सम्पूर्ण कर्मकाण्ड को शंका, अस्वीकृति एवं समाधान की मंजिलों से पार कर कई बार व्यवस्थित रूप प्रदान किया।

इस जाति ने कभी अपने देवताओं को उलट–पलट कर परखा तो कभी अपने उस प्रजापति को, जिसे वे अब तक सृष्टि का सर्वशक्तिमान, सर्व व्यापक, सर्वद्रष्टा जन्मदाता मानते आये थे, केवल गौण स्थान दिया, तो कभी उसे बिल्कुल अनुपयोगी कहकर किनारे फेंक दिया और उसके बिना ही एक विश्वधर्म (बौद्ध धर्म) का श्रीगणेश किया, जिसके आज भी संसार में किसी अन्य धर्म से अधिक अनुयायी हैं।

इस जाति ने विविध प्रकार की वेदियों की रचना में ईंटों की व्यवस्था से रेखा–गणितशास्त्र का विकास किया और अपनी उपासना तथा यज्ञों को निश्चित समय पर करने के प्रयास में ज्योतिष शास्त्र को जन्म दे संसार को चकित कर दिया।

इस जाति ने गणित शास्त्र को संसार की किसी भी अर्वाचीन अथवा प्राचीन जाति से कहीं अधिक योगदान किया। रसायन शास्त्र, वैद्यक शास्त्र एवं संगीत शास्त्र के अपने ज्ञान तथा वाद्य यंत्रों के आविष्कार

के द्वारा आधुनिक योरोपीय सभ्यता के निर्माण में भारी सहायता पहुँचायी ।

इस जाति ने ही आकर्षक कथाओं के माध्यम से शिशु–मस्तिष्क को संस्कारित करने के शास्त्र का आविष्कार किया। आज भी प्रत्येक सभ्य देश के शिशु–विद्यालयों में प्रत्येक शिशु को उसी पद्धति से पढ़ाया जाता है और वह जीवन पर्यन्त इन संस्कारों को लेकर चलता है।

इस विश्लेषणात्मक जिज्ञासा के आगे और पीछे, उसके चारों ओर एक मखमली आवरण के रूप में विद्यमान उस जाति की एक अन्य महान् बौद्धिक विशेषता है–और वह है उसकी कवित्वमय अन्तर्दृष्टि। उसका धर्म उसका दर्शन, उसका इतिहास, उसका नीतिशास्त्र उसका राज्यशास्त्र, सब काव्यमयी कल्पना के पुष्प–कुंज में सजा दिये गये हैं और यह सब चमत्कार है उस संस्कारित भाषा का, जिसे हम ''संस्कृत'' कहते हैं, जिसके अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में उन्हें इससे अधिक अच्छी प्रकार व्यक्त करना न सम्भव था न है। यहाँ तक कि गणित शास्त्र के कठोर तथ्यों की अभिव्यक्ति के लिये भी उस भाषा ने हमें संगीतमय अंक प्रदान किये।

यह विश्लेषणात्मक शक्ति तथा साहसी कवित्वदृष्टि ही हिन्दू जाति की मनोरचना में वे दो महातत्त्व हैं जिन्होंने उसे आगे बढने की प्रेरणा दी। वे दोनों मिलकर हमारे राष्ट्रीय चरित्र का केन्द्र बिन्दु बन गये। इनके समन्वय ने ही जाति को सदैव इन्द्रियों के परे बढ़ने की शक्ति दी। यही हमारी उन लचीली कल्पनाओं का मूल रहस्य है, जो किसी शिल्पी द्वारा निर्मित उन लौहपत्रों के समान है, जो यद्यपि कठोर लौह स्तम्भ में से काटकर निकाले गये हैं तथापि इतने लचीले हैं कि उन्हें सरलतापूर्वक वृत्ताकार किया जा सकता है।

उन्होंने कविता की; सोने और चांदी में, रत्नों की जड़ावट में, संगमरमर के अद्‌भुत फर्शों में, अनेक स्वरों के संगीत में तथा आश्चर्यजनक वस्त्रों में, जो वस्तु जगत की अपेक्षा स्वप्न जगत के प्रतीत होते हैं उन सभी के पीछे इस राष्ट्रीय वैशिष्ट्य का सहस्रों वर्ष लम्बा इतिहास विद्यमान हैं।

सम्पूर्ण कलाओं और शास्त्रों यहाँ,तक कि पारिवारिक जीवन की कठोर वास्तविकताओं को भी इन कवित्वमयी धारणाओं के आवरण से ढक दिया गया है। ये धारणायें तब तक आगे बढायी गयी हैं जब तक इंद्रियगम्य का संयोग अतीन्द्रिय से नहीं हो जाता और दृश्य में अदृश्य की सुगन्ध नहीं आ जाती।

इस जाति की प्राचीनतम झाँकियों में भी हम उसे इस वैशिष्ट्य से सम्पन्न और उसके प्रयोग में कुशल पाते हैं। निश्चित ही वेदों में इस जाति का जो चित्र हमें मिलता है उसके निर्माण के पूर्व उसने धर्म और समाज के अनेक रूपों एवं अवस्थाओं को पार कर पीछे छोड़ दिया होगा।

वेदों में एक सुगठित देवशास्त्र, विस्तृत कर्मकाण्ड विविध व्यवसायों की आवश्यकता की पूर्ति के हेतु जन्मगत–वर्गों पर आधारित समाज रचना एवं जीवन की अनेक आवश्यकताओं तथा अनेक विलासिताओं का वर्णन उपलब्ध है।

आध्यात्मिकता का आदिस्रोत

यही वह पुरातन भूमि है जहाँ ज्ञान ने अन्य देशों में जाने के पूर्व अपनी आवास भूमि बनाई थी–यही वह भारतवर्ष है, जिसके आध्यात्मिक प्रवाह के भौतिक प्रतीक ये समुद्राकार नद हैं और चिरन्तन हिमालय एक तह पर दूसरी तह चढ़ा कर अपने हिममण्डित शिखरों द्वारा मानो स्वर्ग के रहस्यों में ही झांक

रहा है। यह वही भारतवर्ष है जिसकी धरा को महानतम ऋषियों की चरणरज पवित्र कर चुकी है।

यहीं सर्वप्रथम मानव–प्रकृति एवं अन्तर्जगत के रहस्यों की जिज्ञासाओं के अंकुर उगे थे यहीं आत्मा की अमरता, एक परमपिता परमेश्वर की सत्ता, प्रकृति और मनुष्य के भीतर ओत–प्रोत एक परमात्मा के सिद्धांत सर्व प्रथम उठे और यही धर्म तथा दर्शन के उच्चतम सिद्धान्तों ने अपने चरम शिखर स्पर्श किये। इसी भूमि से अध्यात्म एवं दर्शन की लहर पर लहर बार–बार उमड़ी और समस्त संसार पर छा गयी।

देवत्व प्राप्ति के लिये संघर्ष

क्या अद्भुत देश है यह! इस पुण्य भूमि पर चाहे जो खड़ा हो–वह इसी भूमि का पुत्र हो अथवा विदेशी– यदि उसकी आत्मा दुर्दान्त पशुओं के स्तर तक नहीं गिर चुकी है–तो वह स्वयं को पृथ्वी के इन श्रेष्ठतम एवं शुद्धतम पुत्रों के तेजोमय विचारों से घिरा हुआ अनुभव करेगा, जो शताब्दियों तक पशु को देवत्व के शिखर तक उठाने के लिये कार्य करते रहे हैं और जिनका आरम्भ खोजने में इतिहास भी असफल रहा है। यहाँ का वायु मण्डल ही आध्यात्मिकता की तरंगों से ओतप्रोत है।

यह देश दर्शन, आध्यात्मिकता, नीतिशास्त्र एवं उन सबका पुण्य धाम है जो मनुष्य को पशुत्व के विरूद्ध उसके सतत् संघर्ष में विश्रामस्थल प्रदान करता है। यह देश ही वह साधना भूमि है जिसके द्वारा मनुष्य अपने कर्त्ता के आवरण को फेंककर अजर–अमर, आदि–अन्त रहित आत्मा का साक्षात्कार कर सकता है। यही देश है जहां सुखों का प्याला भरा रहा और उससे भी अधिक भरा रहा दुखों का प्याला–किन्तु तभी तक, जब मानव को सर्वप्रथम यह पता न चला कि यह सब मिथ्या है, माया है। यहीं सबसे पहले यौवन के पूर्ण विकास में पर भोग–विलासों की गोद में शक्ति और यश के चरम शिखर पर आसीन मनुष्य ने माया की जंजीरों को तोड़ डाला।

यहीं मानवता के समुद्र में आनन्द और पीड़ा, सामर्थ्य और दौर्बल्य, वैभव और दारिद्रय, सुख और दुख, हास्य और रूदन जीवन और मृत्यु की शक्तिशाली लहरों के घात–प्रतिघात के आलोड़न के बीच दिव्य शांति और शाश्वत निस्तब्धता की तीव्र आकांक्षा में से वैराग्य का सिंहासन प्रकट हुआ।

यहाँ इसी देश में सर्वप्रथम ''जन्म'मरण की कठिन समस्या है, जीवन की तृष्णा और उसे बनाये रखने के लिये, वृथा घोर संघर्ष जिनका परिणाम केवल दुःखों के संचय में हुआ, इन सब समस्याओं का सामना किया गया और उन्हें हल किया गया। उनको इस तरह हल कर दिया गया मानों वे कभी पहले थी ही नहीं और आगे कभी रहेंगी भी नहीं। यहाँ और केवल यहाँ ही यह खोज हुई कि जीवन स्वयं भी एक अभिशाप है और किसी ऐसी सत्ता की प्रतिच्छाया मात्र है, जो एकमेव सत्य है।

यही वह देश है जहाँ धर्म को व्यावहारिक एवं सच्चा रूप प्राप्त हुआ और केवल यहीं स्त्री तथा पुरूष धर्म के अन्तिम लक्ष्य का साक्षात्कार करने के लिये साहसपूर्वक कूद पड़े। बिल्कुल उसी प्रकार, जिस प्रकार अन्य देशों में लोग जीवन के सुखों को लूटने के लिये पागल होकर कूद पड़ते हैं और अपने कमजोर बन्धुओं को लूट लेते हैं।

यहीं और केवल यहीं मानव अन्तः करण का विस्तार इतना अधिक हुआ कि उसमें न केवल सम्पूर्ण मानव जाति समा गयी अपितु पशु–पक्षी और पेड़–पौधों को भी स्थान मिल गया। उच्चतम देवताओं से लेकर रेत के कणों तक महानतम से निम्नतम तक सब कोई उस विशाल अनन्त मानव अन्तःकरण में स्थान

पा गये और केवल यहीं मानव आत्मा ने सकल ब्रह्माण्ड को अविच्छिन्न अखण्ड इकाई के रूप में देखा और उसकी प्रत्येक धड़कन को अपनी धड़कन जाना।

सौम्य हिन्दू

सम्पूर्ण विश्व पर हमारी मातृभूमि का महान् ऋण है। एक–एक देश को लें तो भी इस पृथ्वी पर दूसरी कोई जाति नहीं है, जिसका विश्व पर इतना ऋण है जितना कि इस सहिष्णु एवं सौम्य हिन्दू का! ''निरीह हिन्दू'' कभी–कभी ये शब्द तिरस्कारस्वरूप प्रयुक्त होते हैं किन्तु यदि कभी किसी तिरस्कार युक्त शब्द प्रयोग में भी कुछ सत्यांश रहना सम्भव हो तो वह इसी शब्द प्रयोग में है। यह निरीह हिन्दू सदैव ही जगत्पिता की प्रिय सन्तान रहा है।

प्राचीन एवं अर्वाचीन कालों में शक्तिशाली एवं महान् जातियों से महान् विचारों का प्रादुर्भाव हुआ है। समय–समय पर आश्चर्यजनक विचार एक जाति से दूसरी के पास पहुंचे हैं। राष्ट्रीय जीवन में उमड़ते हुए ज्वारों ने अतीत में और वर्तमानकाल में महासत्य और शक्ति के बीजों को दूर–दूर तक बिखेरा है। किन्तु मित्रों! मेरे शब्द पर ध्यान दो। सदैव यह विचार संक्रमण रणभेरी के घोष के साथ युद्धरत सेनाओं के माध्यम से ही हुआ है। प्रत्येक विचार को पहले रक्त की बाढ में डूबना पड़ा। प्रत्येक विचार को लाखों मानवों की रक्त धारा में तैरना पड़ा। शक्ति के प्रत्येक शब्द के पीछे असंख्य लोगों का हाहाकार अनाथों की चीत्कार एवं विधवाओं का अजस्र अश्रुपात सदैव विद्यमान रहा। मुख्यतः इसी मार्ग से अन्य जातियों के विचार संसार में पहुँचे।

जब ग्रीस का अस्तित्व नहीं था रोम भविष्य के अन्धकार के गर्भ में छिपा हुआ था, जब आधुनिक योरपवासियों के पुरखे जंगलों में रहते थे और अपने शरीरों को नीले रंग से रंगा करते थे उस समय भी भारत में कर्मचेतना का साम्राज्य था। उससे भी पूर्व, जिसका इतिहास के पास कोई लेखा नहीं, जिस सुन्दर अतीत के गहन अन्धकार में झांकने का साहस परम्परागत किवंदन्ती भी नही कर पाती, उस सुदूर अतीत से अब तक भारतवर्ष से न जाने कितनी विचार–तरंगे निकली हैं, किन्तु उनका प्रत्येक शब्द अपने आगे शांति और पीछे आशीर्वाद लेकर गया है। संसार की सभी जातियों में केवल हम ही हैं जिन्होंने कभी दूसरों पर सैनिक विजय प्राप्ति का पथ नहीं अपनाया और इसी कारण हम आशीर्वाद के पात्र हैं।

एक समय था जब ग्रीक सेनाओं के सैनिक संचलन के पदाघात से धरती काँपा करती थी। किन्तु पृथ्वीतल पर उसका अस्तित्व मिट गया। अब सुनाने के लिये उसकी एक गाथा भी शेष नहीं। ग्रीकों का वह गौरव सूर्य सदा सर्वदा के लिये अस्त हो गया। एक समय था जब संसार की प्रत्येक उपभोग्य वस्तु पर रोम का श्येनांकित ध्वज उड़ा करता था। सर्वत्र रोम की प्रभुत्ता का दबदबा था और वह मानवता के सर पर सवार थी। पृथ्वी रोम का नाम लेते ही काँप जाती थी परन्तु आज उसी रोम का कैपिटोलिन पर्वत खण्डहरों का ढेर बना हुआ है, जहाँ पहले सीजर राज्य करते थे वहीं आज मकडियाँ जाला बुनती हैं।

इनके अतिरिक्त कई अन्य गौरवशाली जातियां आयीं और चली गयीं, कुछ समय उन्होंने बड़ी चमक–दमक के साथ गर्व से छाती फुलाकर अपना प्रभुत्व फैलाया अपने कलुषित जातीय जीवन से दूसरों को आक्रान्त किया, पर शीघ्र ही पानी के बुलबुलों के समान मिट गयीं। मानव जीवन पर ये जातियाँ केवल इतनी ही छाप डाल सकीं।

किन्तु हम आज भी जीवित हैं और यदि आज भी हमारे पुराण ऋषि–मुनि वापस लौट आये तो उन्हें आश्चर्य न होगा उन्हें ऐसा नहीं लगेगा कि वे किसी नए देश में गए। वे देखेंगे कि सहस्रों–सहस्रों वर्षों के अनुभव एवं चिंतन से निष्पन्न वही प्राचीन विधान आज भी यहाँ विद्यमान हैं अनन्त शताब्दियों के अनुभव एवं युगों की अभिज्ञता का परिपाक–वह सनातन आचार–विचार आज भी वर्तमान है, और इतना ही नहीं, जैसे–जैसे समय बीतता जाता है एक के बाद दूसरे दुर्भाग्य के थपेड़े उन पर आघात करते जाते हैं पर उन सब आघातों का एक ही परिणाम हुआ है कि वह आचार दृढ़तर और स्थायी ही होते जाते हैं। किन्तु इन सब विधानों एवं आचारों का केन्द्र कहाँ है?किस हृदय में रक्त संचालित होकर उन्हें पुष्ट बना रहा है? हमारे राष्ट्रीय जीवन का मूल स्रोत कहाँ है?इन प्रश्नों के उत्तर में सम्पूर्ण संसार के पर्यटन एवं अनुभव के पश्चात मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि उसका केन्द्र हमारा धर्म है।

यही वह भारतवर्ष है जो अनेक शताब्दियों तक शत–शत विदेशी आक्रमणों के आघातों को झेल चुका है। यही वह देश है जो संसार की किसी भी चट्टान से अधिक दृढ़ता से अपने अक्षय पौरूष एवं अमर जीवन शक्ति के साथ खड़ा हुआ है। इसकी जीवन शक्ति भी आत्मा के समान ही अनादि, अनन्त एवं अमर है और हमें ऐसे देश की सन्तान होने का गौरव प्राप्त है।

शब्दार्थ

शुचिता–पवित्रता

कलुषित – गंदा, मैला, अपवित्र

निष्क्रमण – बाहर निकालना

अनिर्वचनीय –अकथनीय, अवर्णनीय

पुरातन– प्राचीन

सौम्य – सुन्दर, कोमल

प्रभुत्व– सत्ता, शासन

अप्रतिहत– बिना रूकावट, अपराजित

विहान– प्रातः, भोर

लेशमात्र – थोड़ा सा

अर्वाचीन– आधुनिक, वर्तमान का

दौर्बल्य – दुर्बलता, कमजोरी

अजस्र– निरन्तर चलने वाला

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ''हमारी पुण्य–भूमि और उसका गौरवमय अतीत'' किस महापुरूष के भाषण का अंश है?

   (क) स्वामी दयानंद सरस्वती (ख) स्वामी रामतीर्थ

   (ग) स्वामी अखण्डानन्द (घ) स्वामी विवेकानंद ( )

2. स्वामी विवेकानंद शिला स्मारक के आधार स्तम्भ हैं–

   (क) दत्तोपंत ठेंगड़ी (ख) चिन्मयानंद

   (ग) एकनाथ रानाडे (घ) राष्ट्र–बंधु ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. पृथ्वी पर ऐसा देश जो मंगलमयी पुण्यभूमि कहलाने का अधिकारी है। कौन है?नाम लिखिए।
2. सामान्य जन इतिहास का क्या अर्थ ग्रहण करते हैं ?
3. ऐसा कौनसा तथ्य है जो आर्य जाति को भरत–भूमि के मूल से जोड़ता है?
4. नासतः सत् जायते! का तात्पर्य क्या है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कार्य–कारण सिद्धांत को आर्य जाति ने अपने जीवन में कैसे प्रतिपादित किया?
2. हिन्दू जाति की मनोरचना के दो महातत्त्व कौनसे हैं तथा इनके समन्वय का क्या परिणाम रहा?लिखिए।
3. भारत –भूमि पर मानव अंतःकरण का विस्तार किस प्रकार हुआ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. पठित पाठ के आधार पर भारतीय गौरवमय अतीत पर अपने विचार लिखिए।
2. भारतीय आर्य जाति की विश्व को क्या देन है?लिखिए।
3. ''भारतीय जीवन दर्शन विश्लेषणात्मक मेधा से संचालित है।'' कैसे?लिखिए।

डॉ. रामकुमार वर्मा से बातचीत

–शैवाल सत्यार्थी

लेखक परिचय

जन्म 27 जुलाई 1933 भिंड (मध्यप्रदेश) में हुआ।

शैवाल सत्यार्थी बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। वे कवि, कथाकार, भेंटवार्ताकार व पत्रकार थे। उनकी रचनाएँ प्रमुख पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने के साथ–साथ आकाशवाणी से भी प्रसारित होती रहीं हैं।

साक्षात्कार लेखक के रूप में सत्यार्थी जी को महारत हासिल हुई है। इन्होंने पंत, निराला, बच्चन, वृन्दावन लाल वर्मा, अश्क, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, सियाराम शरण गुप्त, रामकुमार वर्मा, कृशनचन्दर, क्षेमचन्द सुमन व नीरज जैसे प्रतिष्ठित साहित्यकारों के साक्षात्कार लिए हैं। प्रस्तुत साक्षात्कार 'बातें–मुलाकातें' नामक संग्रह में प्रकाशित हैं।

सत्यार्थी जी ने कहानी व कविता के क्षेत्र में भी अपना अमूल्य योगदान दिया है। इनका कहानी संग्रह 'और पहिये घूम रहे थे' उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत है। 'ओस और अंगारे' इनका प्रसिद्ध काव्यसंग्रह है। 'सप्त सिंधु' नाम से भी इनका काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ है।

आप पत्रकार व सम्पादक के रूप में भी प्रतिष्ठित रहे हैं 'इंगित' पत्रिका का सफल संपादन आपके द्वारा किया गया।

इनकी एक और उपलब्धि है जिसमें इन्होंने साहित्य की पत्र लेखन विधा को विकसित किया है। इनके 'धर्म पिता के पत्र : धर्म पुत्र के नाम' अर्थात 'महाकवि बच्चन के सौ पत्र शैवाल के नाम' विशेष उल्लेखनीय है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत पाठ साक्षात्कार विधा पर आधारित है। प्रसिद्ध एकांकीकार व नाटककार डॉ. रामकुमार वर्मा से की गई बातचीत है। यह साक्षात्कार डॉ. वर्मा के व्यक्तित्व व कृतित्व के साथ–साथ साहित्य के गूढ़ प्रश्नों की तह तक जाता है। पाठ का महत्व इस रूप में भी है कि यह साक्षात्कार विधा के परिचय के साथ–साथ महान साहित्यकार के जीवन व साहित्यिक दृष्टिकोण से अवगत करवाता है।

****

डाक्टर साहब ने मुस्कुराकर कहा, ''मैं शेव करता जाऊँ और आप नोट्स लेते जाइए।'' यह साकेत की पहली सुबह थी–'साकेत' – डॉ. रामकुमार वर्मा के बंगले का यही नाम है। नवम्बर की एक सर्द सुबह, जब मैं रामकुमार जी का इण्टरव्यू लेने पहुँचा।

'अपनी प्रथम चर्चित कविता के विषय में बताइए, जो अपनी साहित्य–यात्रा की पहली मंजिल बनी हो?कहानी तो शायद, आपने कभी कोई लिखी नहीं?'

मुश्किल से एक मिनिट सोचकर, रामकुमार जी ने अपनी मंजिल को दुहराना शुरू कर दिया – ''सन् 22 में कानपुर के बेनीमाधव खन्ना ने समाचार पत्रों में घोषणा प्रकाशित की, कि 'देश सेवा' शीर्षक विषय पर, देश के प्रमुख कवियों की रचनाएँ आमंत्रित की जाएँ और सर्वश्रेष्ठ चार को 51,51 रूपये के पुरस्कार प्रदान किए जाएँ। उस समय मैं 17 वर्ष का था। माताजी के आग्रह पर मैंने छठी अंग्रेजी क्लास में पुनः प्रवेश किया था। उस समय भी मैं प्रभात फेरी में भाग लिया करता था। मेरे बड़े भाई ने व्यंग्य से कहा – 'बहुत स्वराज्य–स्वराज्य चिल्लाते हो, इस विषय पर कविता लिखकर पुरस्कार प्राप्त करो, तब जानें। मैंने कहा कि यह तो अखिल भारतीय प्रतियोगिता है, मैं अभी कच्ची उमर का हूँ। बड़े–बड़े कवियों की पंक्ति में कैसे बैठ सकता हूँ? मेरे काव्य की साधना क्या है? किन्तु, जिस रूप में मुझे छेड़ा गया उसका उत्तर देने की बलवती आकाँ{ाा मेरे ह्रदय में थी और मैंने पूर्ण आत्मविश्वास के साथ 'देश–सेवा' पर एक कविता लिखी और उसे चुपचाप बेनीमाधव खन्ना, आनन्द मठ, कानपुर के पते पर भेज दिया। उसकी प्रारम्भिक पत्तियाँ इस प्रकार हैं –

जिस भारत की धूल लगी है मेरे तन में,
क्या मैं उसको भूल सकता जीवन में?
चाहे घर में रहूँ अथवा मैं वन में,
पर मेरा मन लगा हुआ है इसी वतन में।
सेवा करना देश की, बस मेरा उद्देश्य है
मैं भारत का हूँ सदा, भारत मेरा देश है।

यों तो मेरी प्रारम्भिक शिक्षा, पिताजी के नागपुर में रहने के कारण, मराठी में हुई थी–और हिन्दी तथा संस्कृत की आरम्भिक शिक्षा मेरी माँ ने घर पर ही मुझे दी। ऐसी स्थिति में, हिन्दी साहित्य का अभ्यास बढ़ाना मेरे लिए बहुत प्रेरणादायक रहा। मैंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा की तैयारी की और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के कारण, मेरा उत्साह और भी बढ़ा कविता भेजने के दो माह बाद समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ कि तीन बड़े–बड़े कवियों के साथ 51 रूपये का पुरस्कार मुझे भी मिल गया है। लोगों को आश्चर्य हुआ कि एक छोटे से बालक को अखिल भारतीय प्रतियोगिता में कैसे पुरस्कार मिल गया?यह कविता सारे देश के पत्रों में प्रकाशित हुई और उसे ही पढकर, अक्टूबर 1922 में प्रयाग के श्री रामरख सिंह सहगल ने अपने नव–सम्पादित मासिक पत्र में मुझे कविताएँ लिखने के लिए आमंत्रित किया। देश–सेवा पर लिखी यही कविता, मेरी साहित्य यात्रा की पहली मंजिल है–जिसनें मुझे काव्य क्षेत्र में प्रवेश दिया और मैं कविताएँ लिखने के लिए प्रोत्साहित हुआ।'

यों, असहयोग आन्दोलन के जमाने में स्कूल छोड़ने पर, अपने पिता से जो भर्त्सना मुझे प्राप्त हुई थी–उसके परिणाम स्वरूप मैंने एक छोटी–सी कहानी 'सुखद सम्मिलन' राष्ट्रीय दृष्टिकोण से लिखी थी यह सन् 1922 में ही हिन्दी साहित्य प्रसारक कार्यालय, नरसिंहपुर से पुस्तक रुप में प्रकाशित हो गई थी।

यह कुतूहल का विषय अवश्य है कि मेरी सर्व प्रथम प्रकाशित रचना, एक लम्बी कहानी से प्रारम्भ हुई। मेरे अब तक के साहित्य जीवन में यह पहली और अन्तिम कहानी रही। मैंने साहित्य में नाटक, निबन्ध, कविता, आलोचना सभी कुछ लिखा–किन्तु, कहानी फिर एक भी नहीं लिख सका। सन् 1922 से मेरी कविताएँ ही 'चाँद' के माध्यम से हिन्दी में प्रवेश पातीं रहीं।

वह कौन–सी महत्वपूर्ण कृति है, जिसे लिखकर आपको सर्वाधिक सन्तोष और प्रसन्नता की अनुभूति हुई?

मैं प्रत्येक कृति को सम्पूर्ण मनोयोग से लिखता हूँ और प्रत्येक की समाप्ति पर मुझे प्रसन्नता और सुख मिलता है – वह चाहे कविता हो, चाहे निबन्ध हो, चाहे कुछ और। कुछ कृतियाँ ऐसी अवश्य हैं जिन्हें सामान्य जनता और विद्वानों ने समान रूप से उत्कृष्ट समझा है। काव्य में – 'चित्रलेखा' पर 2000/रुपये का देव पुरस्कार मिला। 'चन्द्र किरण' पर 500/ रूपये का चक्रधर पुरस्कार। 'आकाश गंगा' पर 800/ रूपये का तथा 'एकलव्य' पर 500/ रूपये का पुरस्कार मिला।

नाटकों के क्षेत्र में–'सप्त किरण' पर सम्मेलन का रत्न कुमार पुरस्कार मिला। 'रिमझिम' एकांकी संग्रह पर, केन्द्र से 2000/ रूपये का पुरस्कार। 'विजय पर्व' पर मध्यप्रदेश से 2500/रूपये का महाकवि कालिदास पुरस्कार। किन्तु भारत की शिक्षा संस्थाओं में मेरे एकांकी नाटकों का सर्वाधिक अभिनय हुआ।

ऐतिहासिक नाटकों में–'चारूमित्रा', 'तैमूर की हार', 'औरंगजेब की आखिरी रात', 'कौमुदी महोत्सव', 'दुर्गावती', 'दीपदान', 'नाना फड़नीवस' बहुत ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय एकांकी नाटक समझे गये। 'चारूमित्रा' एकांकी के अनुवाद समस्त भारतीय भाषाओं में तथा अंग्रेजी और रूसी में हुए।

यों, काव्य में सबसे अधिक सन्तोष प्रसन्नता मुझे 'एकलव्य' महाकाव्य लिखकर हुई। नाटक में 'दीपदान' और 'औरंगजेब की आखिरी रात' लिखकर।

अब यह बताइये कि विश्व–साहित्य, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में आपको कौन कवि, लेखक पसन्द हैं और जिनसे आप प्रभावित भी हुए।'

विश्व साहित्य में – शेक्सपियर, मिल्टन, कालिदास, कीट्स और टेनीसन मुझे विशेष पसन्द हैं। हिन्दी में तुलसी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त। बंगला में रवीन्द्र, तमिल में कम्ब (नाम ठीक से न समझ पाने के कारण मैंने दुबारा पूछा, तो डॉ. सा. जोर से बोले – (KAMB)ने विशेष प्रभावित किया है। नाटकों में मैटरलिंक, इब्सन, शेक्सपियर, वुड हाउस, सिंज डी. एल राय से प्रभावित हुआ हूँ।

आलोचना में – स्काट जेम्स और जॉन ड्रिंक्वाटर। विदेशी विद्वानों के शिल्प से प्रेरणा ग्रहण कर मैंने उन्हें नितान्त भारतीय संवेदनाओं से सम्बलित किया है। जिस प्रकार एक भ्रमर नाना पुष्पों से पराग ग्रहण कर, उन्हें मधु की एक बूँद में परिणत करता है उसी प्रकार मेरी प्रवृत्ति विदेशी साहित्य से साहित्य के उपादान ग्रहण कर, उन्हें भारतीय रस सिद्धान्त के आधार पर मौलिक रूप देने में रही है।'

'हिन्दी रंगमंच के विकास और उसकी भावी सम्भावनाओं के विषय में – आप क्या सोचते हैं? उसका भविष्य कैसा है?'

विदेशी शासन हमारे सांस्कृतिक उत्थान में सहयोग नहीं दे सकता था, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात

जिस भाँति अन्य कलाओं में नवजागरण हुआ है – उसी प्रकार रंगमंच भी युग की परिस्थितियों के अनुकूल अपना–अपना निर्माण करेगा। आवश्यकता है इस बात की, कि हमारा नाटककार जिस भाँति जीवन की परिस्थितियों का अध्ययन करता है, उसी भाँति वह रंगमंच की विधाओं का भी अध्ययन करे। हमारा नाटककार भ्रमणशील हो, अन्य भारतीय भाषाओं के रंगमंच का सम्यकरूपेण अध्ययन कर वह आवश्यकतानुसार अखिल भारतीय रूप से नाटक साहित्य और रंगमंच का संयोजन करे। रंगमंच के उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में मुझे पूर्ण विश्वास है।

क्या आज का साहित्यकार, संसार के विनाशोन्मुख संघर्ष एवं स्वार्थों के स्थान पर एक आदर्श, शांतिपूर्ण सृष्टि के निर्माण में सहायक नहीं हो सकता?

अत्यन्त विश्वास के स्वरों में, रामकुमार जी ने कहा – अवश्य हो सकता है। उसे केवल अपनी समस्याओं में सीमित नहीं रह कर विश्व की समस्याओं को भी अपने साहित्य में लाना होगा। हमारे साहित्य के सुन्दर पक्ष के साथ ही शिव पक्ष को भी उभारने की आवश्यकता है– और तब, साहित्य सच्चे अर्थों में साहित्य हो सकेगा– जब वह हित की भावनाओं से सम्बलित हो। यदि एटम बम के निर्माण में दशाब्दियों तक वैज्ञानिक दल अनुसंधान कर सकता है, तो कोई कारण नहीं कि हमारा साहित्यकार अपनी साधना से शांति और कल्याण का अणु बम तैयार कर विश्व में नवीन जीवन–मूल्यों का निर्माण न कर सके।

साहित्य में प्रचलित वाद–छायावाद–रहस्यवाद से लेकर प्रगतिवाद–प्रयोगवाद तक आप अपना दृष्टिकोण व्यक्त कीजिए।

साहित्य के दो विभाग आदिकाल से ही रहे हैं– प्रथम सिद्धान्त पक्ष, दूसरा अनुभूति पक्ष। सिद्धान्तों से प्रेरणा ग्रहण कर, साहित्य जीवन में अवतरित हुआ। इसी के आधार पर साहित्य के आदर्श और यथार्थ दो रूप बनते चले आए हैं। जहाँ दोनों मिल गए वहां आदर्शोन्मुख यथार्थ बन गया। मेरी दृष्टि यथार्थोन्मुख आदर्श रही है। सिद्धान्तवादी साहित्य की अपेक्षा, अनुभूति के क्षणों में बँधा हुआ साहित्य वास्तव में साहित्य की संज्ञा से विभूषित होता है। उसी में जीवन–दर्शन है और भविष्य जीवन की प्रेरणा है। ऐसे साहित्य को मैं किसी वाद के पाश में बाँधकर समालोचना के न्यायधीश के समक्ष बंदी रूप में उपस्थित नहीं करना चाहता।

किसी पूर्व कल्पित अथवा सुचिन्तित सिद्धान्त को सामने रखकर काव्य की रचना नहीं हो सकती। काव्य तो मलय–समीर की भाँति अनुभूति की दिशाओं में बिना किसी प्रयास के जिस ओर बहना चाहता है, बह जाता है। उसकी दिशा को हम आगे चलकर जो चाहें नाम दे दें।

अनुभूति का विषय किसी वाद में बँधकर नहीं चलता, क्योंकि वाद तो विशिष्ट सिद्धान्तों का सुनिश्चित समूह ही है। ऐसी स्थिति में, काव्य में, मैं कोई वाद नहीं मानता। वह तो समालोचकों का दृष्टिकोण है कि चढ़ी हुई नदी का पानी उतर जाने के बाद, किनारों पर पड़ी हुई रेत पर लहरों के चिह्न देखकर वे प्रवाह की गतिविधि का अनुमान लगा लेते हैं। उसी भाँति, अन्तरानुभूति के काव्य की मानसिक रूप राशि से उन्हें रहस्यवाद या छायावाद अथवा अन्य वादों के दर्शन हो जाते हैं। यों मैं इन नामों को बूरा नहीं समझता, क्योंकि इनसे काव्य की दिशाओं का ज्ञान साहित्य के विद्यार्थियों को हो जाता है। प्रगतिवादी काव्य तो सिद्धान्तों पर चलता है–यों, यदि प्रगतिवादी का तात्पर्य जीवन में नव–चेतना की सृष्टि करना है, तो कबीर, तुलसी और मीरा हिन्दी के सबसे बड़े कवि कहे जा सकते हैं।

साहित्य के अतिरिक्त, आपकी रूचि किन कार्यों तथा क्षेत्रों में है?

यों, तो काव्य ही मेरी चेतना का प्रमुख माध्यम रहा है– तथापि शैशव के संस्कारों ने मुझे नाटककार बना दिया। जब छुटपन में पिताजी अपने घर पर रामलीला करवाया करते थे, तो मेरी बड़ी अभिलाषा रहती थी कि राम या लक्ष्मण में से कोई बीमार हो जा, और उनके स्थान पर मैं उनका अभिनय करूँ। लेकिन दुर्भाग्य से, कोई बीमार नहीं पड़ता था। पिताजी भी नाटकप्रेमी थे, इसलिए उनको प्रसन्न करने के लिए मोहल्ले के लड़कों को इकट्ठा कर मैं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'अंधेर नगरी' या 'भारत दुर्दशा' का अभिनय अपने घर पर ही, अपने बिस्तर की चादर टाँग कर या बहनों की ओढनी छीनकर और एक गुड़ियों जैसा रंगमंच तैयार कर अभिनय किया करता था। जबलपुर में मित्र मंडल द्वारा अभिनीत बद्रीनाथ भट्ट लिखित 'चन्द्रगुप्त' नाटक खेला गया– जिसमें मैंने रणधीर के पुत्र का पार्ट किया लेकिन जो लड़का साड़ी पहनकर मेरी माँ बना था– उससे माँ, प्यास लगी है, पानी दो वाक्य न कह सका। किसी लड़के को मैं अपनी माँ कैसे कह सकता था। मेरा पार्ट असफल रहा। किन्तु नाटक खेलने की प्रेरणा मेरे मन में अच्छी तरह जम गयी। हाईस्कूल में आकर माखनलाल चतुर्वेदी जी के 'श्रीकृष्णार्जुन युद्ध' में मैंने श्रीकृष्ण का अभिनय किया। बांसुरी बहुत अच्छी बजाता था, गाना भी अच्छा गा लेता था– इसलिए मेरा पार्ट बड़ा सफल हुआ।

यूनिवर्सिटी में आकर अनेकानेक अभिनय किये। फिर 'यूनिवर्सिटी ड्रामेटिक एसोसिएशन' का सभापति बन गया और देशी–विदेशी अनेक नाटककारों के नाटकों का अभिनय किया तथा कराया। इन समस्त परिस्थितियों ने मेरे मन में एकांकी नाटक के अंकुर उत्पन्न किये और मैं एकांकीकार बन गया। अध्यापक होने के कारण, साहित्य की समीक्षा करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। फलस्वरूप समीक्षक और आलोचक भी बना। आल इण्डिया रेडियो पर अधिकाधिक वार्ताएँ लिखने के कारण निबन्धकार की प्रतिभा भी मुझमें उदित हुई। काश्मीर की प्राकृत शोभा ने मुझे गद्य–गीत लिखने की प्रेरणा दी। बालक ध्रुव के सामने यदि कमलनयन नारायण प्रकट हो जाएँ तो, आनन्दन की जो अस्फुट वाक्यावली उसके मुख से निकल सकी–वैसी ही अस्फुट प्रेरणाओं में मेरा गद्य–गीत निर्मित हो सका। जिस भाँति ऊषा के बादलों में नाना–प्रकार के रंग, न जाने किस कोण से आ जाते हैं, उसी प्रकार काव्य, एकांकी, आलोचना, निबन्ध, गद्य–गीत, न जाने किस प्रेरणा से कब मेरे साहित्याकाश में उदित हो गये। बचपन में टेनिस का शौकीन था।पाण्डुलिपियों का संग्रह और अभिनय मेरी विशेष रूचि हैं।

साहित्यकार और उसके शासकीय सरंक्षण पर आपके अपने क्या विचार हैं\

आज साहित्यकार को ऐसे वातावरण का निर्माण करना है, जिसमें विश्व की कल्याण कामना निहित है। यदि उसे शासन तंत्र में स्थान मिलता है, तो पहली शर्त यह है कि वह अपने दायित्व और आत्मसम्मान को अपने हाथ से न जाने दे। उसे जो माध्यम मिल रहा है, उसके द्वारा वह जनता–जनार्दन की कल्याण कामना से शासन की शक्ति का उपयोग करते हुए, अपना साहित्य सांस्कृतिक मूल्यों पर निर्मित करे।

जीवन के प्रति आपका क्या दृष्टिकोण है? बस इतना भर और, किन्तु अपनी हस्तलिपि में, मुझे दे दीजिए।

और फव्वारे के पास, एक लॉन–चेयर पर बैठकर उन्होंने लिखा–'यह जीवन सदैव हरा–भरा है,

सुन्दर है, मधुर है, जैसे चाँद की हँसी, फूल की सुगन्धी, पक्षी का कलरव, नदी की लहर, जो हमेशा आगे बढ़ाना जानती है। फैलती है तो, जैसे पलक खुल रही है। और वह पलभर में संसार का तट छू लेती है। मेरे विचार से जीवन की परिभाषा इससे अधिक क्या हो सकती है? इसमें सुख है, सुगन्धी है, रूप है और है ऐसी प्रगतिशीलता जो अपने से निकलकर सारे संसार को छू लेती है।

मैं देखता हूँ कि मेरे चारों ओर फूल खिल रहे हैं, झरने बहते चले जा रहे हैं और पहाड़ अपना माथा उठा कर मौन भाषा में कह रहे हैं कि हमारे हृदय में गुफाओं के गहरे घाव हैं, किन्तु हम खड़े होकर आकाश से बातें कर रहे हैं। सौन्दर्य, साहस और शक्ति के ये अग्रदूत मेरा पथ–प्रदर्शन कर रहे हैं, मुझे मेरे जीवन का रास्ता दिखला रहे हैं। फिर मेरा जीवन फूल की तरह खिला हुआ, निर्झर की तरह प्रगतिशील और पहाड़ की तरह महान बनने से कैसे रूक जायेगा? यह 'साकेत' की, मेरी आखिरी और एक अच्छी सुबह थी।

शब्दार्थ

भर्त्सना – डाँट	कृति – रचना	नितान्त – बिल्कुल
भ्रमर – भौंरा	परिणत – बदलना	उपादान – आधार तत्व
सम्यकरूपेण – समान रूप से		शिव – कल्याण
अनुसंधान – खोज	पाश – बंधन	शैशव – बाल्यवस्था
कलरव – मधुर स्वर	नाना – विविध	

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. डॉ. वर्मा की प्रथम रचना किस वर्ष प्रकाशित हुई –

(अ) 1922 (ब) 1926

(स) 1950 (द) 1927 ( )

2. डॉ. वर्मा की प्रथम कहानी थी –

(अ) परीक्षा (ब) सुखद सम्मिलन

(स) पाजेब (द) इनमें कोई नहीं ( )

3. डॉ. वर्मा को अपनी किस काव्य कृति से सर्वाधिक संतोष हुआ –

(अ) सप्तकिरण (ब) चन्द्रकिरण

(स) एकलव्य (द) चारूमित्रा ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. डॉ. वर्मा की प्रारम्भिक शिक्षा किस भाषा में हुई?

2. डॉ. वर्मा की प्रथम रचना पर कितनी राशि पुरस्कार में मिली?

3. आदिकाल से साहित्य के कौनसे दो विभाग प्रचलित हैं?

4. डॉ. वर्मा को गद्य–गीत की प्रेरणा कहाँ से मिली?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. बड़े भाई ने डॉ. वर्मा से क्या व्यंग्य किया ?

2. विश्व साहित्य के किन साहित्यकारों से डॉ. वर्मा प्रभावित हुए ?

3. डॉ. वर्मा के अनुसार कौनसा साहित्य वास्तव में साहित्य की संज्ञा से विभूषित होता है?

4. साहित्य के अतिरिक्त डॉ. वर्मा की रूचि किन क्षेत्रों में थी?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. डॉ. वर्मा को कौनसे साहित्यिक पुरस्कार मिले?

2. हिन्दी रंगमंच के विकास और उसकी भावी संभावनाओं के विषय में डॉ. वर्मा के क्या विचार थे?

3. साहित्य में प्रचलित वाद के सम्बन्ध में डॉ. वर्मा का क्या दृष्टिकोण था ?

4. 'शैशव के संस्कारों ने मुझे नाटककार बना दिया' कैसे? स्पष्ट कीजिए ?

सुभाषचन्द्र बोस (संकलित)

''तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा ''

पाठ—परिचय

प्रस्तुत पाठ भारतीय स्वाधीनता संग्राम के नायक नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की जीवनी पर आधारित है।

नेताजी ने भारत की आजादी के लिए जिस प्रकार के त्याग एवं कष्टपूर्ण जीवन को जीया वह प्रत्येक देशवासी के लिए श्रद्धा का विषय है। पाठ में नेताजी के बचपन से लेकर जीवनपर्यन्त कार्यों व घटनाओं की जानकारी प्रस्तुत की गई है —

****

सिंगापुर के टाउन हाल के सामने आजाद हिन्द सेना की परेड़ को सम्बोधित करते हुये जिस वीर सेनापति ने भारत की आजाद हिन्द सेना को सम्बोधित किया उनका नाम है सुभाषचन्द्र बोस। भारत की आजादी की लड़ाई में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का नाम सोने के अक्षरों में अंकित रहेगा। हमारे लिए यह जानना बहुत जरूरी है कि नेताजी किन परिस्थितियों में जन्मे और भारत की आजादी के लिए संघर्ष करते हुए आगे बढ़े।

उड़ीसा के कटक नगर में 23 जनवरी 1897 को श्री सुभाषचन्द्र बोस का जन्म हुआ। उनके पिता श्री जानकी नाथ बोस कटक के बड़े ही प्रतिष्ठित वकील थे। वैसे वे 24 परगना के कोदलिया ग्राम के रहने वाले थे परन्तु वकालत करने के लिए कटक नगर मे जाकर बस गये थे। सुभाषचन्द्र बोस की माँ श्रीमती प्रभावती एक धार्मिक महिला थीं। वे श्री रामकृष्ण परमहंस की भक्त थीं। अपने बचपन का जिक्र करते हुए सुभाष बाबू ने स्वयं लिखा, हमारा घर बहुत धनवान नहीं था लेकिन अच्छा खाता पीता उच्च मध्यम श्रेणी का परिवार था। मुझे गरीबी और अभाव का तब तक कोई अनुभव नहीं था, न मुझमें स्वार्थ लालच और आलस्य की आदत थी। हमारे घर में फिजूल खर्ची नहीं थी। एक बड़े परिवार में जन्म लेने के कारण कई दुख होते हैं। बच्चे को जितना माँ बाप का ध्यान, प्यार और निर्देश मिलने चाहि, वह सम्भव नहीं हो पाते हैं, इससे व्यक्तित्व के विकास में बाधा आती है। हमारे घर में हमारे आश्रितों की संख्या भी काफी थी। हम अपने नौकरों की भी इज्जत करते थे।''

5 वर्ष की उम्र में जनवरी 1902 में सुभाष बाबू को स्कूल में भर्ती करवाया गया। वे इससे बहुत प्रसन्न हुए क्योंकि भाई बहनों का बराबर स्कूल जाना और उनका पीछे छूट जाना उन्हें खटकता था लेकिन पहले ही दिन एक दुर्घटना हो गई और सुभाष बाबू को 24 घंटे आराम करना पड़ा।

यह स्कूल एंग्लो इंडियन लोगों का था जिसके प्रधानाध्यापक और प्रधानाध्यापिका मिस्टर एंड मिसेज यंग थे। सुभाष बाबू ने उस स्कूल के प्रारम्भिक संस्मरण लिखते हुए कहा है कि श्रीमती यंग का वे

बहुत आदर करते थे। श्री यंग बहुत कठोर थे। वहाँ पर एक मिस एस थी जिससे उनके सभी सहपाठी और वह स्वयं घृणा करते थे। इस स्कूल में एंग्लो इंडियन और भारतीय बच्चों के बीच भेदभाव बरता जाता था। इस भेदभाव के सम्बन्ध में बताते हुए सुभाष बाबू ने लिखा है ''उस स्कूल में छात्रवृत्ति के लिए भारतीय बच्चों को प्रार्थना–पत्र देने का कोई अधिकार नहीं था। यद्यपि हममें से बहुत सारे लोग अपनी कक्षाओं में सर्वप्रथम आते थे। इसी प्रकार एंग्लो इंडियन बच्चे स्वयं सेवक दल में भरती हो सकते थे और अपने कंधों पर बंदूक रख कर अभ्यास के लिए जाते थे। भारतीय बच्चों और एंग्लों इंडियन बच्चों में अक्सर झगड़ा होता रहता था।''

1908 तक सुभाष बाबू इसी स्कूल में रहे। जब कलकत्ता विश्वविद्यालय में बंगला भाषा मैट्रिक, इन्टर और बी.ए. के लिए अनिवार्य कर दी गई तो सुभाष बाबू को भारतीय स्कूल में भर्ती कराना अनिवार्य हो गया। वे अपनी कक्षा में सर्वप्रथम आते थे। सुभाष बाबू ने अपनी आत्मकथा में उस स्कूल के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है, ''यदि आज मुझे कोई कहे कि कोई भारतीय अपने बच्चे को उस स्कूल में पढने के लिए भेजे तो मैं उसे एंग्लो इंडियन स्कूल में भेजने से मना करूँगा।''

राबिन शा कालेजियट स्कूल कटक में सुभाष बाबू ने पढ़ाई शुरू की। उनको अपनी मातृ भाषा बिल्कुल भी नहीं आती थी। उन्हें सबसे पहले बंगला भाषा में गाय या घोड़े पर एक लेख लिखना पड़ा। उसकी भाषा बहुत गलत थी अतः अध्यापक ने उनके निबन्ध की मजाक उड़ाते हुए पूरी कक्षा में सुनाया उससे उन्हें बहुत नीचा देखना पड़ा। इस चोट से प्रभावित होकर उन्होंने बंगला भाषा का इतना अध्ययन किया कि वे वार्षिक परीक्षा में बंगला भाषा में सर्वश्रेष्ठ अंक लेकर उत्तीर्ण हुए ।

परिवार में खेलने– कूदने की अधिक इजाजत नहीं थी। अतः घर में बैठ कर संस्कृत के नीति श्लोक याद करने का उन्हें बहुत शौक था। वे बागवानी भी करते थे। अपने इन दिनों का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है, ''मुझे लगता है कि मैं बहुत छुटपन में बहुत गम्भीर हो गया हूँ।''

इस स्कूल के प्रधानाध्यापक बाबू बेनीमाधव दास ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। उन्हें सदा ऐसा लगता था कि बाबू बेनीमाधव दास के चेहरे पर वही भावाभिव्यक्ति है जैसी कि आचार्य केशवचंद्र सेन के मुख पर थी। बाबू बेनीमाधव दास से पढने के वर्ष में ही उनका अन्य जगह स्थानान्तरण हो गया। उनकी विदाई के दिन उनके शिष्य सुभाष बाबू की आँखें भर आईं।

उन्हीं दिनों में उनके पड़ोस में उनके एक निकट रिश्तेदार आकर बसे। अचानक सुभाष बाबू उनके घर गये और यहीं पर उन्होंने सबसे पहले स्वामी विवेकानन्द द्वारा रचित पुस्तकों को देखना शुरू किया। स्वामी विवेकानन्द के इस कथन ने उनको बहुत सहारा दिया, ''अपने मोक्ष के लिए संसार का हित कीजिए।''

स्वामी विवेकानन्द के साहित्य को पढ़ने से उनके मन में जो नैतिक असमंजस था वह समाप्त हो गया। स्वयं सुभाष बाबू ने अपनी मनःस्थिति का वर्णन करते हुए कहा है ''मेरे मन में दो प्रकार के संशय थे एक – सांसारिक जीवन की ओर मेरे में आकर्षण आता था लेकिन मेरी आत्मा उसके विरूद्ध विद्रोह करती थी एवं दूसरा मेरे मन में भोग की चेतना पैदा होने लगी जो कि प्राकृतिक थी लेकिन मेरी आत्मा उसे अनैतिक मानती थी। इस समय में मेरे मन को दिशा देने का काम स्वामी विवेकानन्द के साहित्य ने किया। मातृभूमि की सेवा का पहला मंत्र मुझे स्वामी विवेकानन्द के विचारों से प्राप्त हुआ।

सुभाष बाबू ने लिखा है, ''स्वामी विवेकानन्द के साहित्य को पढकर मैं अनके गुरू श्री रामकृष्ण परमहंस देव के प्रति आकृष्ट हुआ और उनके विचारों ने मुझ पर बहुत प्रभाव डाला कि जब तक वासना और लोभ दोनों को मनुष्य नहीं छोड़ता तब तक वह आध्यात्मिक जीवन के लि, उपयुक्त पात्र नहीं बनता। मेरे जैसे और भी कई विद्यार्थी श्री रामकृष्ण परमहंस देव और स्वामी विवेकानन्द के साहित्य से प्रभावित हुए। हमारा एक पूरा दल बन गया था।

मेरे माता–पिता ने इस बात को देखा कि मुझमें आध्यात्मिक विचार बढ़ रहे हैं और अपने दोस्तों के साथ में अध्ययन की बजाय उधर मुड़ रहा हूँ तब मुझे उन्होंने बहुत डाँटा लेकिन मैंने उनके प्रति भी विद्रोह कर दिया। स्वामी विवेकानन्द के विचारों से प्रभावित होकर मैंने सामाजिक और पारिवारिक जीवन के प्रति भी विद्रोह कर दिया। हम लोग ब्रह्मचर्य, योग इत्यादि की पुस्तकें पढ़ने लगे। स्वामी रामकृष्ण परमहंस देव ने यह भी कहा है कि ध्यान एकांत में किया जाता है। सुभाष बाबू ने लिखा ''एक बार कमरे में बैठकर ध्यान लगाया। कमरे में अंधेरा था तो हमारे घर की एक बूढ़ी नौकरानी अन्दर आई और अंधेरे में मुझे बिना देखे मुझसे टकरा गई तब मेरा ध्यान भंग हुआ।''

उन्हीं दिनों में एक संन्यासी कटक में आये। उन्होंने तीन बातें बताईं। 1. निरामिष भोजन 2. नियमित मंत्रपाठ और 3. नियमित माता–पिता के चरण स्पर्श। मैंने कई दिनों तक इन तीनों का कठोरता से पालन किया। मेरे सभी घरवालों को इस पर आश्चर्य हुआ मुझे जब इसमें किसी प्रकार का कोई आध्यात्मिक लाभ नहीं हुआ तो मैंने इन संकल्पों को छोड़ दिया और पुनः श्री रामकृष्ण परमहंस देव और स्वामी विवेकानन्द के विचारों में खो गया।

उनके घर में बालक कभी–कभी राष्ट्रीय महापुरूषों के चित्र अखबारों से काटकर दिवारों पर लगा देते थे। एक बार एक रिश्तेदार के साथ एक पुलिस अधिकारी उनके घर आया और उन्होंने उनके पिताजी से कहकर वे तस्वीरें दीवार पर से उतरवा दीं।

सन् 1911 तक राजनैतिक दृष्टि से नेताजी विकसित नहीं थे। 1911 में जार्ज पंचम के राज्याभिषेक के सम्बन्ध में एक निबन्ध प्रतियोगिता में सुभाषचन्द्र शामिल हुए। सन् 1912 में कटक में उनके स्कूल में एक विद्यार्थी आया जिनसे बाबू बेनीमाधव दास ने छात्रों को परिचित कराया। उस छात्र ने ही सबसे पहले यह बताया कि राष्ट्र के प्रति भारतीय लोग कर्त्तव्य का निर्वाह कैसे करें।

बचपन से भूत प्रेतों की कहानियों से पैदा हुये डर पर विजय पाने के लिए योग और ध्यान की लगन ने सुभाष बाबू की बहुत मदद की।

सुभाष बाबू के मोहल्ले और घर में छोटी जातियों के लोग और मुसलमान रहते थे। उनसे किसी प्रकार का परहेज सुभाष बाबू नहीं करते थे। एक बार एक छोटी जाति के व्यक्ति ने उनके घर वालों को खाने पर बुलाया सभी ने न जाना तय किया लेकिन सुभाष बाबू ने अपने माता–पिता की आज्ञा तोड़कर उनके यहाँ जाकर खाना खाया। 1913 में मैट्रिक की परीक्षा में सारे विश्वविद्यालय में सुभाष बाबू प्रथम श्रेणी में द्वितीय रहे।

उसके बाद उन्होंने कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलेज में अध्ययन शुरू किया। कॉलेज के प्रारम्भिक दो वर्षों में वे एक ऐसे समूह के साथ रहते थे जिन पर श्री रामकृष्ण परमहंस देव और स्वामी विवेकानन्द के

विचारों का प्रभाव था और ये लोग सामाजिक सेवा करते थे। यह दल आतंकवादियों की कार्यवाहियों के विरूद्ध था। इन्हीं दिनों में श्री अरविन्द घोष का प्रभाव सुभाष बाबू पर पड़ा। अरविन्द घोष उस समय भारतीय जनजीवन के महान नेता थे। वे राजनेता के साथ–साथ रहस्यवादी परमयोगी भी थे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, अरविंद घोष से भिन्न व्यक्तित्व के व्यक्ति थे लेकिन अरविन्द के विचारों का प्रभाव सुभाष बाबू पर बहुत पड़ा। विशेष तौर से अरविंद के इस भाषण का ''मैं चाहता हूँ कि आप में से कुछ लोग बड़े बनें, बड़े बनें अपने लिए नहीं लेकिन भारत को महान बनाने के लिए ताकि दुनिया के राष्ट्रों में भारत सिर ऊँचा करके खड़ा रह सके। मैं चाहता हूँ कि आप में से जो गरीब और अकेले है उनकी गरीबी और उनका अकेलापन भारत माता की सेवा में समर्पित हो जाएँ । हम लोग काम करें ताकि भारत समृद्धशाली हो। हम लोग दुख झेलें ताकि भारत सुखी हो सके।''

प्रेसीडेंसी कॉलेज में पढ़ते समय एक बार 1914 के ग्रीष्म अवकाश में वे सम्पूर्ण उत्तर भारत के तीर्थों की ओर घूमने निकल गये। उस समय विश्वयुद्ध छिड़ गया।

जिन दिनों सुभाष बाबू प्रेसीडेंसी कॉलेज में पढ़ते थे उन दिनों छोटी–छोटी कहानियों के रूप में यह बातें प्रचलित हो गईं थीं कि अब अंग्रेजों ने किस भारतीय का अपमान किया और कब किस–किस भारतीय को अंग्रेजो ने रेल के डिब्बे से उतार दिया। कटक के दिनों में उनके चाचा को भी अंग्रेजों ने रेल के डिब्बे से उतार दिया था। अतः सुभाष बाबू को इन कहानियों पर कभी अविश्वास नहीं होता था। उनके मन में यह बात प्रभाव डाल रही थी कि अंग्रेज केवल शक्ति की भाषा समझते हैं।

1914 में संसार से विराग लेने का विचार सुभाष बाबू ने छोड़ दिया। 1915 में इन्टर परीक्षा में सुभाष बाबू प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए लेकिन वे सर्वप्रथम नहीं आ सके, इसका उन्हें दुख था। सुभाष बाबू ने दर्शनशास्त्र में ऑनर्स का अध्ययन प्रारम्भ किया लेकिन 1916 की जनवरी में एक दुर्घटना हो गई। एक अंग्रेज अध्यापक श्रीमान् ओ ने किसी छात्र को शारीरिक दृष्टि से क्षति पहुंचाई, वहीं पर छात्रों ने उनका विरोध किया। कॉलेज में हड़ताल हुई। प्रिंसिपल ने जुर्माना किया लेकिन छात्र नहीं माने। आखिर श्री ओ के सम्मान और छात्रों के सम्मान के अनुरूप एक समझौता हुआ लेकिन प्रिंसिपल ने बाद में जुर्माना माफ नहीं किया। छात्रों ने इसके बाद एक बार पुनः यह सुना कि श्री ओ ने किसी अन्य विद्यार्थी को भी पीट दिया। इस पर छात्रों ने विद्रोह कर दिया और एक बार सीढियों के सामने श्री ओ को पीटा। यह सब सुभाष बाबू के सामने हो गया। इसके बाद प्रिंसिपल ने सुभाष बाबू को कॉलेज से निकाल दिया। सर आशुतोष मुखर्जी कलकत्ता उच्च न्यायालय के जज भी थे और जो कुलपति भी थे, की कमेटी ने सुभाष बाबू और अन्य विद्यार्थियों के विरूद्ध प्रतिवेदन दिया, अतः उन्हें विश्वविद्यालय की परीक्षा में नहीं बैठने दिया गया और उन्हें प्रेसीडेंसी कॉलेज से निकाल दिया गया।

वे कटक लौट आए। कटक में आकर उन्होंने हैजा पीड़ित लोगों की बड़ी सेवा की। उस समय की एक जनश्रुति है।

संसार में सभी तरह के लोग होते हैं। निर्धन बस्ती में रहने वाले कुछ लोगों ने ऐसा समझा कि ये अमीरों के बच्चे हमारी हँसी उड़ाने के लिए आते हैं। नगर के माने हुए गुण्डे हैदर के साथ मिलकर उन्होंने सुभाष सहित उन सेवादार बालकों का खुलकर विरोध किया और उनके सेवा कार्य में रूकावटें डालने लगे

परन्तु बालक सुभाष बचपन से ही गम्भीर थे। उन्होंने इन बातों की ओर बिल्कुल ध्यान न दिया और रोगियों की सेवा बराबर करते रहे।

इस रोग ने गुण्डे हैदर के घर को भी नहीं छोड़ा। वह दौड़ा–दौड़ा एक–एक डॉक्टर, वैद्य के पास गया परन्तु कोई न आया। वह थककर हाँफता–हाँफता अपने घर को लौटा तो क्या देखता है कि उन्हीं बालकों का दल, जिनका वह विरोध करता था, उस घर की सफाई में जुटा है। एक बालक रोगी का औषध दे रहा है, दूसरा उसकी सेवा में लगा हुआ है और तीसरा मीठी बातें सुनाकर उसका दिल बहला रहा है। उससे न रहा गया। वह एक कोने में बैठ दोनों घुटनों के बीच मुँह छिपा कर फूट–फूटकर रोने लगा।

दल के नेता सुभाष बाबू ने देखा तो अपने नरम–नरम हाथों को उसके सिर पर फेरने लगे। और उसे धैर्य बंधाते हुए बोले, ''भाई तुम्हारा घर गन्दा था, इसीलिए रोग ने घेर लिया। अब हम उसकी सफाई कर रहे हैं। एक दूसरे के दुख–सुख में काम आना तो मनुष्य का कर्त्तव्य है।''

हैदर खाँ ने उठकर उनके पाँव पकड़ लिए और बोला, '' नहीं, नहीं मेरा घर तो गन्दा था ही, मेरा मन उससे भी ज्यादा गंदा था। आपकी सेवा ने मेरी दोनों गन्दगियों को निकाल दिया है। मैं किस मुँह से आपका धन्यवाद करूँ। परमात्मा करे आपकी कीर्ति संसार के कोने–कोने में फैले।''

धीरे–धीरे नगर से हैजे का रोग दूर हो गया और लोगो ने सुख की साँस ली।

सुभाष बाबू ने सोचा कि एक सच्चे महात्मा के चरणों में बैठकर योगाभ्यास सीखना चाहिए। घर में रहकर ऐसे महात्मा का मिलना कठिन है। वे एक दिन बिना किसी को बताये घर से निकल पड़े। एक–एक तीर्थ स्थान पर गये। अनेक महात्माओं से मिले, पर सच्चा योगी न मिला। उन्होंने देखा कि सहस्रों साधु गाँजा, भाँग और दूसरे नशे में चूर रहकर जीवन की अमूल्य घड़ियों को व्यर्थ खो रहे हैं। यह देख उन्हें साधु जीवन से घृणा हो गई। वे छः मास के बाद घर लौट आये।

भूख प्यास सहते–सहते उनका शरीर दुर्बल हो गया था। घर पहुँचते ही वे बीमार पड़ गये। कई मास तक बिस्तर पर पड़े रहे। धीरे–धीरे स्वस्थ हुए।

एक वर्ष कटक में रहकर पुनः कलकत्ता पहुँचे और सेना में भर्ती होने का प्रयास किया। इन्हीं दिनों में 49वीं बंगाली रेजीमेंट की भर्ती शुरू हुई। लेकिन आँखों की वजह से सुभाष बाबू को मेडिकल टेस्ट में रद्द कर दिया गया। सुभाष बाबू इसके बाद स्काटिश चर्च कॉलेज के प्रिंसिपल श्री उर्कहार्ट से मिले। जुलाई 1917 में उन्होंने दर्शनशास्त्र में ऑनर्स का पुनः अध्ययन शुरू किया। उन्हीं दिनों में सुभाष बाबू प्रादेशिक सेना में भर्ती हो गये। सुभाष बाबू 1919 में बी.ए. ऑनर्स दर्शनशास्त्र में प्रथम श्रेणी में पास हो गये। इन्हीं दिनों में एक दिन उनके पिताजी ने उन्हें कलकत्ता में बुलाया और उनसे कहा कि आई.सी.एस. की परीक्षा देने के लिए वह शीघ्र ही इंग्लैण्ड रवाना हो जाएं । पहले तो वे कुछ सोच में पड़े और फिर तय कर लिया कि वे रवाना हो जाएगें।

जिस समय सुभाष बाबू ने भारत छोड़ा और आई.सी.एस. की परीक्षा के लिए केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अध्ययन प्रारम्भ किया उसके पूर्व भारत में जलियाँवाला बाग काण्ड हो चुका था। आई.सी.एस. में सुभाष बाबू चौथे स्थान पर उत्तीर्ण हुए। सितम्बर 1920 में सुभाष बाबू आई.सी.एस में चुने गये। अप्रैल 1921 को सुभाष बाबू ने आई.सी.एस से स्तीफा दे दिया। आई.सी.एस. से स्तीफा देने के कारणों का उल्लेख करते हुए

सुभाष बाबू ने लिखा है—

''अब मुझे पक्का विश्वास हो गया है कि अगर मैं नौकरशाही का एक सदस्य न होकर सामान्य व्यक्ति बना रहूँ तो मैं अपने देश की सेवा अधिक अच्छी तरह से कर सकता हूँ। मैं इस बात से इनकार नहीं करता कि ''सर्विस'' में रहते हुए भी कोई व्यक्ति कुछ हद तक अच्छे काम कर सकता है लेकिन नौकरशाही की जंजीरों से मुक्त होकर वह जितनी भलाई कर सकता है उतनी बन्धनग्रस्त होकर कदापि नहीं कर सकता।

एक विदेशी नौकरशाही की सेवा करने के सिद्धान्त से मैं समझौता नहीं कर सकता। इसके अलावा, सार्वजनिक सेवा के लिए अपने आपको तैयार करने की दिशा में पहला कदम है अपने सभी सांसारिक हितों का परित्याग और उस क्षेत्र से पीछे हटने के सभी रास्तों को खत्म कर देना तथा राष्ट्र सेवा में पूरी हार्दिकता से जुट जाना।''

अपने बड़े भाई और पिता को अपने विचारों से अवगत कराने के बाद आई.सी.एस. से त्याग पत्र देकर सुभाष स्वदेश लौट आये। उनके स्तीफे का महान नेता श्री देशबंधु चितरंजन दास ने बहुत स्वागत किया।

सन् 1921 में भारत में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार हो रहा था। सुभाष बाबू ने देशबंधु चितरंजन दास के साथ मिलकर बंगाल में इस आन्दोलन का नेतृत्व किया। देशबंधु चितरंजन दास ने भारत आते ही सुभाष बाबू को नेशनल कॉलेज का प्रिंसिपल बना दिया था। सुभाष बाबू ने अंग्रेजों का विरोध करने के फलस्वरूप 1921 में ही 6 माह की सजा पायी। 1922 में बंगाल में भयंकर बाढ़ आयी। हजारों बेघरबार लोगों की सुभाष बाबू ने बहुत सेवा की। भारत सरकार ने उनकी सेवाओं की सराहना की। 1923 में कांग्रेस ने कौंसिल के चुनाव लड़ने का फैसला किया। कलकत्ता कार्पोरेशन में देशबंधु चितरंजन दास का बहुमत आया और वे मेयर बन गये। उन्होंने सुभाष बाबू को प्रमुख अधिकारी नियुक्त किया। सुभाष बाबू ने कलकत्ता नगर के जनजीवन में बहुत सुधार किया। 25 अक्तूबर 1924 को सरकार ने बंगाल आर्डिनैन्स पेश किया जिसमें यह प्रावधान रखा कि सरकार किसी भी व्यक्ति को जब चाहे बिना मुकदमा चलाए जेल में डाल सकती है। इस अध्यादेश के तहत सुभाष बाबू गिरफ्तार कर लिये गये लेकिन सुभाष बाबू 6 माह तक फिर भी कलकत्ता कार्पोरेशन के लिए कार्य करते रहे। इस समय आप अलीपुर जेल में वहाँ से बहरामपुर जेल में और फिर बर्मा की मांडले जेल में भेज दिए गये। मांडले जेल के दुखों का वर्णन करते हुए सुभाष ने लिखा

''एक कवि का कथन है कि मृत्यु का कोई मौसम नहीं होता — मेरे विचार से मांडले में भी धूल का कोई मौसम नहीं है, क्योंकि संसार के इस कोने में वर्षा ऋतु का तो कभी आगमन होता ही नहीं। मांडले में तो हर स्थान पर धूल ही धूल है। यहाँ तक कि वायु में धूल है, अतः सांस के साथ भी धूल फाँकनी होती है। भोजन में धूल है, अतः भोजन के साथ उसे खाना होता है। आपकी मेज पर, कुर्सी और बिस्तर पर धूल है, अतः आपको उसका कोमल स्पर्श करना ही पड़ता है। यहां धूल की आँधियाँ आती हैं और दूर दूर तक के पेड़ों और पहाड़ियों को ढक देती हैं। उस समय आप इसके पूर्ण सौन्दर्य के दर्शन कर सकते हैं। इस दृष्टि से हम इसे दूसरा परमेश्वर कह सकते हैं।

यह तो हम सबको ही विदित ही है कि लोकमान्य 6 वर्ष तक कारागार में रहे परन्तु मेरी यह पक्की

धारणा है कि कदाचित् ही हममें से कोई यह मानता है कि उन्होंने इस अवधि में कैसी–कैसी शारीरिक मानसिक यातनाएँ भोगी। मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि वे यहाँ अकेले रहे। यहाँ उनका कोई बुद्धिजीवी साथी भी न था। केवल इतना ही नहीं, बल्कि वे अन्य बन्दियों से मिल–जुल भी नहीं सकते थे। सांत्वना के लिए केवल पुस्तकों का ही उन्हें एकमात्र सहारा था अन्यथा उनका जीवन पूर्णरूपेण एकांकी था।

वह वार्ड, जिसमें कभी लोकमान्य रहे थे, आज भी विद्यमान है अन्तर केवल इतना है कि इसका बाहरी ढाँचा बदल दिया गया है। हमारे वार्ड की तरह ये वार्ड भी काष्ठ–स्तम्भ वलयों से निर्मित है, जहाँ ग्रीष्म काल में न ऊष्मा से बचाव है, न सूर्य की किरणों से। यहाँ पावस में वर्षा से, शीतकाल में ठण्ड से और वर्ष भर चलने वाली धूल भरी आँधियों से बचने का कोई सहारा नहीं है।''

जेल में सुभाष बाबू का स्वास्थ बिगड़ गया। उन्हें स्वीट्जरलैंड जाने की शर्त पर छोड़ना सरकार ने मंजूर किया लेकिन सुभाष बाबू ने मना कर दिया। उनकी रिहाई के लिए देश में चारों ओर से हड़तालें हुईं। अन्त में ब्रिटिश सरकार ने 16 मई 1927 को सुभाष बाबू को रिहा कर दिया। सुभाष बाबू का कलकत्ता में अभूतपूर्व स्वागत हुआ। 1928 की मई में सुभाष बाबू महात्मा गाँधी से मिलने गये। लेकिन वहाँ से निराश लौटे। इसी वर्ष कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में जी.ओ.सी बनाये गये और उन्होंने श्री मोतीलाल नेहरू का कलकत्ता पहुँचने पर भव्य स्वागत किया। 26 जनवरी 1930 को सुभाष बाबू कलकत्ता के मेयर चुने गये। लेकिन इसके पूर्व सन् 1925 में देशबंधु चितरंजन दास के स्वर्गवास के बाद सुभाष बाबू ने श्रीमती बसंती देवी को इस प्रकार पत्र लिखा –

''देशबंधु चले गए। सिद्धिदाता के उस वरद पुत्र ने विजय मुकुट पहनकर ही भारत के विशाल कर्मक्षेत्र से दिव्यलोक की यात्रा की। आज उन्होंने महान प्यार के द्वारा ही अमरत्व प्राप्त किया है। आज हमारे चारों ओर बाह्य संसार में अंधकार है, और ह्रदय में शून्यता है। जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक अंधकार ही अंधकार है। अंधकार की प्राचीर में आलोक–किरण के प्रवेश के लिए तिलभर भी स्थान नहीं है।''

सन् 1930 जनवरी में नगर में जुलूस निकालने की मनाही थी लेकिन कलकत्ता में सुभाष बाबू ने जो जुलूस निकाला उस पर पुलिस ने लाठीचार्च किया जिसमें सुभाष बाबू घायल हो गये। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और 9 माह के कारावास का दण्ड मिला। 3 अप्रैल 1930 को पुनः जेल में सुभाष बाबू पर लाठीचार्ज हुआ जिसमें वह घायल हो गये । वे कई दिनों तक बेहोश रहे । कलकत्ता में हाहाकार मच गया । भारत भर में जनता बिगड़ उठी ।4 अपैल 1931को गाँधी–इरविन समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत सुभाष बाबू जेल से मुक्त हुए लेकिन इसके पूर्व जेल में ही वे कलकत्ता कार्पोरेशन के मेयर बन गये थे । 1931 मेंसुभाष बाबू जब बम्बई में कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक से लौट रहे थे तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। यहाँ उनका स्वास्थ्य खराब हो गया। उन्हें टी०बी० बताई गई। 8 मार्च 1933 को आस्ट्रिया के वियना नगर में आपको इलाज के लिए भेजा गया। उन्हीं दिनों श्री विट्ठलभाई पटेल वहीं पर थे जो कि भारतीय असेम्बली के प्रधान थे। विट्ठलभाई पटेल सुभाष बाबू के विचारों से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के प्रचार के लिए एक लाख रूपये का ट्रस्ट स्थापित किया जिसके एक मात्र ट्रस्टी भी सुभाष बाबू

बनाये गये।

जुलाई माह में सुभाष बाबू प्राग गये। उन्हीं दिनों पिता श्री जानकी नाथ बहुत बीमार थे। सुभाष बाबू देश लौट पड़े पर कलकत्ता बंदरगाह पर उतरते ही उनको केवल घर जाने की इजाजत मिली जहाँ पर थोड़ी देर बाद उनके पिता का स्वर्गवास हो गया।

10 जनवरी 1934 को सुभाष बाबू इलाज के लिए पुनः वियना चले गये। इन्हीं दिनों रोम में इटली के नेता श्री मुसोलिनी से आपने भेंट की। फरवरी 1936 में आयरलैंड गए और वहाँ श्री डी० वेलरा से मिले।

अप्रैल 1936 में जैसे ही सुभाष बाबू वापिस भारत लौटे, उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उनके समर्थन में पुनः देश में हड़तालें होने लगी। यर्वदा जेल में उनका स्वास्थ्य फिर बिगड़ने लगा। मार्च 1937 में सुभाष बाबू को फिर मुक्त कर दिया और तभी पुनः स्वास्थ्य लाभ के लिए वे यूरोप चले गए।

अगले वर्ष हरीपुर काँग्रेस के लिए सुभाष बाबू को अध्यक्ष चुना गया। यह काँग्रेस की स्थापना का 51वां वर्ष था। 51 बैलों की जोड़ी से जुते रथ में राष्ट्रपति श्री सुभाषचन्द्र बोस का जुलुस निकला। एक वर्ष तक उन्होंने बापू के साथ मिलकर काम करने का प्रयास किया। 1939 के काँग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष पद के लिए सुभाषचंद्र बोस और डॉ० पट्टाभि सीतारमैया में मुकाबला हुआ। महात्मा गाँधी ने डॉ० पट्टाभि का साथ दिया। लेकिन 20 जनवरी को सुभाष बाबू त्रिपुरा वाली काँग्रेस के पुनः राष्ट्रपति चुन लिए गए। जवाहर लाल नेहरू के अलावा सभी सदस्यों ने कांग्रेस कार्यकारिणी से स्तीफा दे दिया। 106 डिग्री बुखार होने पर भी सुभाष बाबू त्रिपुरा काँग्रेस में स्ट्रेचर पर लेटकर पहुँचे। काँग्रेस के अध्यक्ष सुभाषचन्द्र बोस और महात्मा गाँधी के बीच मतभेद के कारण सुभाष बाबू ने काँग्रेस अध्यक्ष पद से स्तीफा दे दिया।

इसके बाद सुभाष बाबू ने डलहौजी स्क्वायर कलकत्ता में ब्लॉक हॉल नामक स्मारक को हटाने के लिए आंदोलन किया। उनको 2 जुलाई 1940 को जेल में डाल दिया गया। नवम्बर 1940 को उन्होंने जेल में भूख हड़ताल शुरू कर दी। इस पर सुभाष बाबू को मुक्त कर दिया लेकिन उन्हें घर में नजरबन्द कर दिया गया।

15 जनवरी 1941 को सायंकाल एक मौलवी के वेश में सुभाष बाबू घर से निकल पड़े और अफगानिस्तान के रास्ते से मास्को होते हुए बर्लिन पहुँच गये। मास्को में आप स्टालिन से मिले और बर्लिन में आजाद हिन्द फौज का निर्माण किया। उसका पहला केन्द्र ड्रेसडन नगर में रहा। 20 जनवरी 1943 को नेताजी टोक्यो पहुँचे। यहाँ पर जापान के प्रधानमंत्री जनरल टोजो से मिले। यहीं पर जनरल प्रतापसिंह ने नेताजी के आने से पहले आजाद हिन्द सेना बना ली थी जिसके प्रधान श्री रासबिहारी बोस थे। अपने अलग–अलग भाषणों में सुभाष बाबू ने आजाद हिन्द फौज के विजय की कामना की।

''एक भारतीय के रूप में मैं सदैव हिन्दूस्तान की आजादी के लिए लड़ता रहा हूँ। मैं उम्मीद करता हूँ कि सारे भारतीयों को चाहे वे कहीं भी हों, भारत की मुक्ति के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देना चाहिए। प्रत्येक भारतीय को साहस के साथ लड़ना चाहिए। भारत के प्रत्येक पुत्र को इस दृढ़ विश्वास के साथ लड़ना चाहिए कि हमारे पूर्वजों की धरती की मुक्ति का दिन निकट है।

जिस फौज की साहस, निडरता और अजेयता की परम्परा न हो वह ताकतवर दुश्मन पर हावी नहीं हो सकती।

सैनिक होने के नाते आपको निष्ठा, कर्त्तव्य और बलिदान के तीन आदर्शों को संजोये रखना होगा और उनका पालन करना होगा। जो सैनिक देशभक्त होते हैं वे प्राणोत्सर्ग के लिए सदा तत्पर रहते हैं और वे अजेय होते हैं। अगर आप भी अजेय होना चाहते हैं तो इन तीन आदर्शों को हृदय के अन्दर अंकित कर लें।

आज आप भारत के राष्ट्रीय गौरव के संरक्षक हैं और भारत की आशाओं और अभिलाषाओं के सजीव रूप हैं। इसलिए आप अपना व्यवहार ऐसा बनाइये कि आपके देशवासी आपको आशीर्वाद दें और भावी पीढियाँ आप पर गर्व करें।

हमारे दिमागों पर तनिक–सा भी संदेह नहीं है कि जब हम अपनी सेना के साथ भारतीय सीमाओं को पार करेंगे और अपने राष्ट्रीय ध्वज को भारत की धरती पर फहरायेंगे, देशभर में वास्तविक क्रांति फूट पड़ेगी–क्रांति जो अन्ततोगत्वा भारत से ब्रिटिश शासन को बाहर निकाल देगी।''

सुभाष बाबू ने समय–समय पर अपने विचार व्यक्त किये। राष्ट्रीय एकता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए सुभाष बाबू ने कहा।

''स्वतंत्र हो जाने पर यदि हम एक राष्ट्र के रूप में संगठित होना चाहते हैं, तो यथार्थ में कठोर परिश्रम करना होगा। राष्ट्रीय एकता और संगठन को विकसित करने के लिए अनेक बातों की आवश्यकता है यथा – एक सामान्य भाषा, एक सामान्य वेशभूषा, एक सामान्य आहार इत्यादि। ... मेरे विचार से एकता की समस्या व्यापक रूप से एक मनोवैज्ञानिक समस्या है, लोगों को यह अनुभव कराने के लिए कि वे एक राष्ट्र के हैं, शिक्षित करना होगा और लोगों को अभ्यास कराना होगा।''

जनसंख्या वृद्धि पर चिन्ता व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा ,

''स्वतंत्र भारत में लम्बी अवधि के कार्यक्रमों के सम्बन्धों में प्रथम समस्या, जिससे मुकाबला करना है, हमारी बढ़ती हुई जनसंख्या है। मैं इस सैद्धान्तिक प्रश्न की ओर नहीं जाना चाहता कि भारत में जनसंख्या अधिक है अथवा नहीं। मैं तो मात्र यह संकेत करना चाहता हूँ कि जहाँ गरीबी, भूख, बिमारियाँ धरती को शिकार बना रही हैं, वहाँ हम एक दशाब्दी में 3 करोड़ जनसंख्या की वृद्धि को स्वीकार करने में समर्थ नहीं हैं।''

भारतीय नारी सामर्थ्य पर उन्होंने कहा ,

''मैं भारतीय नारी की सामर्थ्य से भली–भाँति परिचित हूँ। इसलिए मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसे हमारी नारियाँ नहीं कर सकती हों और कोई बलिदान अथवा कष्ट ऐसा नहीं है, जिसे वह सहन नहीं कर सके।

मैं वीर भारतीय नारियों की ऐसी टुकड़ी चाहता हूँ जो मृत्यु से जूझने वाली रेजीमेंट बनायें और जो उस तलवार को उठायें जो कि 1857 के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्रम में झाँसी की वीर रानी ने उठाई थी।

उन्होंने युवकों, विद्यार्थियों को जागृत करते हुए अपना संदेश दिया। विद्यार्थियों के लिए उन्होंने अपने संदेश में कहा,

''प्रत्येक छात्र के लिए एक शक्तिशाली और स्वस्थ शरीर, सुदृढ़ चरित्र और आवश्यक सूचनाओं एवं स्वस्थ गतिशील विचारों से परिपूर्ण मस्तिष्क अपेक्षित है। यदि अधिकारियों द्वारा किये गये प्रबन्ध,

स्वास्थ्य, चरित्र और बुद्धि के सही प्रस्फुटन में सहायक नहीं होते, तो आपको वे सुविधाएँ उपलब्ध करानी चाहिए जो इस प्रस्फुटन को सुनिश्चित कर सकें और यदि अधिकारी इस दिशा में आपके प्रयत्नों का स्वागत करें तो और भी अच्छी बात है किन्तु यदि वे इस ओर ध्यान नहीं देते तो उन्हें छोड़ दो और अपने रास्ते जाओ। आपका जीवन आपका अपना है और इसके विकास का उत्तरदायित्व दूसरों से ज्यादा आपके ऊपर है।

विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेने के लिए भी उन्होंने प्रेरित किया,

"मैं नहीं समझ पाता हूँ कि राजनीति में भाग लेने पर विशेष पाबंदी क्यों लगाई जाये जबकि सामान्य रूप से राष्ट्रकार्य में भाग लेने पर कोई पाबंदी नहीं लगाई जाती । सारे राष्ट्र कार्य पर पाबंदी की बात तो मेरी समझ में आती है, किन्तु मात्र राजनैतिक कार्य पर पांबदी निरर्थक है। एक पराधीन देश में, यदि समस्याएँ मूलतः राजनैतिक समस्याएं हैं तो सारे क्रियाकलाप भी वास्तव में राजनैतिक ही हैं। किसी भी स्वाधीन देश में राजनीति में भाग लेने के लिए प्रेरित किया जाता है, क्योंकि विद्यार्थियों में से ही राजनैतिक, विचारक और राजनीतिज्ञ उत्पन्न होते हैं।"

जापान ने दूसरे विश्वयुद्ध में जब बर्मा पर आक्रमण किया और रंगून में भारतीयों को जेल में डाल दिया तब नेताजी ने जापान से समझौता किया। जापान ने जीते हुए दो द्वीप आजाद हिन्द सरकार को सौंप दिए आजाद हिन्द सेना की 5 जुलाई 1943 को सिंगापुर के टाउन हॉल के सामने विशाल परेड हुई जहाँ नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा की।

24 अक्तूबर 1943 को नेताजी ने इंग्लैण्ड और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषण कर दी। लोगों ने हजारों की संख्या में रक्त के हस्ताक्षर कर प्रतिज्ञा पत्र पर नेताजी को भेंट किए। 7 जनवरी 1944 को आजाद हिन्द सरकार का कार्यालय सिंगापुर से रंगून पहुँच गया। यहीं पर नेताजी ने बहादुर शाह जफर की कब्र पर फूल चढ़ाए। 4 फरवरी 1944 को मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए आजाद हिन्द सेना ने कूच किया। आजाद हिन्द सेना कोहिमा पहुँच गई, सैनिकों ने मातृभूमि को जमीन पर लेट कर प्रणाम किया।

इसी बीच विश्वयुद्ध में जापान ने हथियार डाल दिये। तब सुभाष बाबू भी रंगून से बैंकाक चले गये। 18 अगस्त को एक वायुयान दुर्घटना में नेताजी का शरीर आग से झुलस गया बताते हैं। जापान रेडियो ने 23 अगस्त 1945 को यह शोक समाचार प्रसारित किया। सारे भारत में शोक की लहर दौड़ गयी। अपने महान नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस के प्रति सारा राष्ट्र कृतज्ञ है।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सुभाष बाबू का जन्म हुआ –

    (अ) 23 जनवरी 1897   (ब) 30 मार्च 1926

    (स) 2 अक्टूबर 1950   (द) 1 मई 1927   ( )

2. सुभाष बाबू की मातृभाषा थी –

(अ) हिन्दी (ब) अंग्रेजी

(स) बंगला (द) उर्दू ( )

3. मातृभूमि की सेवा का मंत्र सुभाष बाबू को किस से मिला –

(अ) गाँधी (ब) नेहरू

(स) तिलक (द) विवेकानन्द ( )

4. सुभाष बाबू आई.सी.एस. में कब चुने गये –

(अ) अगस्त 1940 (ब) सितम्बर 1920

(स) मई 1924 (द) मार्च 1945 ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सुभाष बाबू के माता–पिता के क्या नाम थे?
2. स्कूल के किस प्रधानाध्यापक ने उन्हें बहुत प्रभावित किया?
3. सुभाष बाबू के अनुसार अंग्रेज कौनसी भाषा समझते हैं?
4. सुभाष बाबू के त्यागपत्र का स्वागत किसने किया?
5. सैनिकों के लिए सुभाष बाबू ने कौनसे तीन आदर्श बताये?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सुभाष बाबू ने अपने परिवार का जिक्र करते हुए क्या बताया?
2. एंग्लो–इंडियन स्कूल का भारतीय बच्चों के प्रति क्या दृष्टिकोण था?
3. ''मेरे मन में दो प्रकार के संशय थे'' सुभाष बाबू के मन में कौनसे दो संशय थे?
4. कटक में आये संन्यासी ने कौनसी तीन बातें बताईं?
5. प्रेसीडेंसी कॉलेज से सुभाष बाबू को क्यों निकाला गया?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्री अरविन्द के जिस भाषण ने सुभाष बाबू को प्रभावित किया उसे अपने शब्दों में लिखिए?
2. गुण्डे हैदर का हृदय परिर्वतन कैसे हुआ?
3. युवकों व विद्यार्थियों के लिए सुभाष बाबू ने क्या संदेश दिया?
4. आजाद हिन्द फौज के गठन व कार्यों के बारे में लिखिए?
5. सुभाष बाबू का भारतीय स्वाधीनता संग्राम आंदोलन में योगदान स्पष्ट कीजिए?

सुभद्रा

—महादेवी वर्मा

लेखिका परिचय

महादेवी वर्मा का जन्म 26 मार्च 1907 को हुआ एवं देहावसान 11 सितम्बर 1987 को हुआ।

महादेवी की मूल पहचान एक छायावादी कवयित्री के रूप में है किन्तु उनका गद्य साहित्य भी लोकप्रियता की बुलन्दियाँ छूता है।

अपने विरह—वेदना के गीतों के कारण महादेवी आधुनिक मीरा के रूप में जानी जाती हैं।

गद्य के क्षेत्र में संस्मरण और रेखाचित्र लिखने में इन्हें लोकप्रियता मिली। इन्होंने अपने संस्मरणों में अपने आस—पास के साधारण से पात्रों को भी अमर बना कर अपनी ममता का परिचय दिया है। इस श्रेणी में घीसा, रामा, लछमा, भक्तिन जैसे अनेक पात्र हैं। इसके साथ ही महादेवी ने अपने समकालीन साहित्यकारों पर भी संस्मरण लिखें हैं।

इनका रचना—संसार व्यापक है, गद्य एवं पद्य दोनों में अनेक पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है। प्रमुख रचनाएँ हैं —

काव्य—निहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, सप्तपर्णा, प्रथम आयाम, अग्निरेखा ।

गद्य— रेखाचित्र — अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएं

संस्मरण — पथ के साथी, मेरा परिवार, संस्मरण

निबन्ध — श्रृंखला की कडियाँ, विवेचनात्मक गद्य, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, संकल्पिता

ललित निबंध — क्षणदा

कहानियाँ — गिल्लू

चुने हुए भाषणों का संकलन — संभाषण

महादेवी को साहित्य सृजन के लिए ज्ञानपीठ एवं पद्मविभूषण जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कारों से नवाजा गया है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संस्मरण में महादेवी वर्मा ने प्रसिद्ध कवयित्री और अपनी बालसखी सुभद्राकुमारी चौहान के सन्दर्भ में अपने बचपन से लेकर मृत्युपर्यन्त स्मृतियों को प्रस्तुत किया है। इन स्मृतियों में सुभद्राकुमारी चौहान के पारिवारिक जीवन से लेकर साहित्यिक जीवन के सभी पक्षों को उभारा है। पाठ में सुभद्रा जी के अविस्मरणीय योगदान का पक्ष भी विशेष रूप से उभरा है।

****

हमारे शैशवकालीन अतीत और प्रत्यक्ष वर्तमान के बीच में समय–प्रवाह का पाट ज्यों–ज्यों चौड़ा होता जाता है त्यों–त्यों हमारी स्मृति में अनजाने ही एक परिवर्तन लक्षित होने लगता है । शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक सम्बन्ध गहरा होता है, उनकी रेखाएँ और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुँधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं । पर जिनसे ऐसा सम्बन्ध नहीं होता वे फीके होते–होते इस प्रकार स्मृति से धुल जाते हैं कि दूसरों के स्मरण दिलाने पर भी उनका स्मरण कठिन हो जाता है ।

मेरे अतीत की चित्रशाला में बहिन सुभद्रा से मेरे सखय का चित्र, पहली कोटि में रखा जा सकता है, क्योंकि इतने वर्षों के उपरांत भी उसकी सब रंग–रेखाएँ अपनी सजीवता में स्पष्ट हैं।

एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी, एक पाँचवीं कक्षा की विद्यार्थिनी से प्रश्न करती है, 'क्या तुम कविता लिखती हो\' दूसरी ने सिर हिलाकर ऐसी अस्वीकृति दी जिसमें हाँ और नहीं तरल हो कर एक हो गए थे । प्रश्न करने वाली ने इस स्वीकृति–अस्वीकृति की संधि से खीझ कर कहा, 'तुम्हारी क्लास की लड़कियाँ तो कहती हैं कि तुम गणित की कापी तक में कविता लिखती हो । दिखाओ अपनी कापी' और उत्तर की प्रतीक्षा में समय नष्ट न कर वह कविता लिखने की अपराधिनी को हाथ पकड़ कर खींचती हुई उसके कमरे में डेस्क के पास ले गई । नित्य व्यवहार में आने वाली गणित की कापी को छिपाना संभव नहीं था, अतः उसके साथ अंकों के बीच में अनधिकार सिकुड़ कर बैठी हुई तुकबन्दियाँ अनायास पकड़ में आ गईं । इतना दंड ही पर्याप्त था। पर इससे संतुष्ट न होकर अपराध की अन्वेषिका ने एक हाथ में चित्र–विचित्र कापी थामी और दूसरे में अभियुक्ता की उँगलियाँ कस कर पकड़ीं और वह हर कमरे में जा–जा कर इस अपराध की सार्वजनिक घोषणा करने लगी।

उस युग में कविता–रचना अपराधों की सूची में थी । कोई तुक जोड़ता है, यह सुनकर ही सुनने वालों के मुख की रेखाएँ इस प्रकार वक्रकुंचित हो जाती थीं मानों उन्हें कोई कटु–तिक्त पेय पीना पड़ा हो ।

ऐसी स्थिति में गणित जैसे गंभीर महत्त्वपूर्ण विषय के लिए निश्चित पृष्ठों पर तुक जोड़ना अक्षम्य अपराध था । इससे बढकर कागज का दुरुपयोग और विषय का निरादर और हो ही क्या सकता था । फिर जिस विद्यार्थी की बुद्धि अंकों के बीहड़ वन में पग–पग उलझती है उससे तो गुरु यही आशा रखता है कि वह हर साँस को अंक जोड़ने–घटाने की क्रिया बना रहा होगा । यदि वह सारी धरती को कागज बना कर प्रश्नों को हल करने के प्रयास से नहीं भर सकता तो उसे कम से कम सौ–पचास पृष्ठ, सही न सही तो गलत प्रश्न–उत्तरों से भर लेना चाहिए । तब उसकी भ्रांत बुद्धि को प्रकृतिदत्त मान कर उसे क्षमा दान का पात्र समझा जा सकता है, पर जो तुकबंदी जैसे कार्य से बुद्धि की धार गोंठिल कर रहा है वह तो पूरी शक्ति से दुर्बल होने की मूर्खता करता है, अतः उसके लिए न सहानुभूति का प्रश्न उठता है न क्षमा का ।

मैंने होंठ भींच कर न रोने का जो निश्चय किया वह न टूटा तो न टूटा । अंत में मुझे शक्ति–परीक्षा में उत्तीर्ण देख सुभद्रा जी ने उत्फुल्ल भाव से कहा, 'अच्छा तो लिखती हो । भला सवाल हल करने में एक दो तीन जोड़ लेना कोई बड़ा काम है !' मेरी चोट अभी दुख रही थी, परंतु उनकी सहानुभूति और आत्मीय भाव का परिचय पाकर आँखें सजल हो आईं । 'तुमने सबसे क्यों बताया ?' का सहास उत्तर मिला 'हमें भी तो यह सहना पड़ता है । अच्छा हुआ अब दो साथी हो गए ।'

बहिन सुभद्रा का चित्र बनाना कुछ सहज नहीं है क्योंकि चित्र की साधारण जान पडने वाली प्रत्येक रेखा के लिए उनकी भावना की दीप्ति 'संचारिनी दीपशिखेव' बनकर उसे असाधारण कर देती है । एक–एक कर के देखने से कुछ भी विशेष नहीं कहा जाएगा, परंतु सबकी समग्रता में जो उद्भासित होता था, उसे दृष्टि से अधिक हृदय ग्रहण करता था ।

मझोले कद तथा उस समय की कृश देहयष्टि में ऐसा कुछ उग्र या रौद्र नहीं था जिसकी हम वीरगीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं । कुछ गोल मुख, चौडा माथा, सरल भृकुटियां, बड़ी और भावस्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हंसी को जमा कर गढ़े हुए से ओठ और दृढ़ता सूचक ठुड्डी, सब कुछ मिलाकर एक अत्यंत निश्चल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे । पर उस व्यक्तित्व के भीतर जो बिजली का छंद था उसका पता तो तब मिलता था, जब उनके और उनके निश्चित लक्ष्य के भीतर में कोई बाधा आ उपस्थित होती थी । 'मैंने हँसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना' कहने वाली की हंसी निश्चय ही असाधारण थी । माता की गोद में दूध पीता बालक जब अचानक हंस पड़ता है, तब उसकी दूध से धुली हँसी में जैसी निश्चिन्त तृप्ति और सरल विश्वास रहता है, बहुत कुछ वैसा ही भाव सुभद्रा जी की हँसी में मिलता था । वह संक्रामक भी कम नहीं थी क्योंकि दूसरे भी उनके सामने बात करने से अधिक हँसने को महत्व देने लगते थे ।

वे अपने बचपन की एक घटना सुनाती थीं । कृष्ण और गोपियों की कथा सुनकर एक दिन बालिका सुभद्रा ने निश्चय किया कि वह गोपी बन कर ग्वालों के साथ कृष्ण को ढूँढने जाएगी ।

दूसरे दिन वे लकुटी लेकर गायों और ग्वालों के झुंड के साथ कीकर और बबूल से भरे जंगल में पहुँच गईं । गोधूली वेला में चरवाहे और गायें तो घर की ओर लौट गए, पर गोपी बनने की साधवाली बालिका कृष्ण को खोजती ही रह गई । उसके पैरों में कांटे चुभ गए, कंटीली झाडियों में कपड़े उलझ कर फट गए, प्यास से कंठ सूख गया और पसीने पर धूल की पर्त जम गई, पर वह धुनवाली बालिका लौटने को प्रस्तुत नहीं हुई । रात होते देख घरवालों ने उन्हें खोजना आरम्भ किया और ग्वालों से पूछते–पूछते अंधेरे करील–वन में उन्हें पाया ।

अपने निश्चित लक्ष्य–पथ पर अडिग रहना और सब–कुछ हंसते–हंसते सहना उनका स्वभावजात गुण था । क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में जब वे आठवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थीं, तभी उनका विवाह हुआ और उन्होंने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया । स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए सन्नद्ध सेनानी पति को वे विवाह से पहले देख भी चुकी थीं और उनके विचारों से भी परिचित थीं। उनसे यह छिपा नहीं था कि नव–वधू के रूप में उनका जो प्राप्य है उसे देने का न पति को अवकाश है न लेने का उन्हें । वस्तुतः जिस विवाह में मंगल–कंकण ही रण–कंकण बन गया, उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा सकती थी । और उन्होंने बसाई भी वहीं । पर इस साधना की मर्मव्यथा को वही नारी जान सकती है जिसने अपनी देहली पर खड़े होकर भीतर मंगल चौक पर रखे मंगल कलश, तुलसी चौरे पर जलते हुए घी के दीपक और हर कोने से स्नेहभरी बाँहें फैलाए हुए अपने घर पर दृष्टि डाली हो और फिर बाहर के अंधकार, आँधी और तूफ़ान को तौला हो और तब घर की सुरक्षित सीमा पार कर, उसके सुन्दर मधुर आह्वान की ओर से पीठ फेर कर अंधेरे रास्ते पर काँटों से उलझती चल पड़ी हो । उन्होंने हँसते–हँसते ही बताया था कि जेल जाते समय उन्हें

इतनी अधिक फूल–मालाएँ मिल जाती थीं कि वे उन्हीं का तकिया बना लेती थीं और लेटकर पुष्पशैया के सुख का अनुभव करती थीं ।

एक बार भाई लक्ष्मणसिंह जी ने मुझसे सुभद्राजी की स्नेहभरी शिकायत की, 'इन्होंने मुझसे कभी कुछ नहीं माँगा।' सुभद्रा जी ने अर्थ भरी हँसी में उत्तर दिया था, 'इन्होंने पहले ही दिन मुझसे कुछ मांगने का अधिकार मांग लिया था महादेवी ! यह ऐसे ही होशियार हैं, माँगती तो वचन–भंग का दोष मेरे सर पड़ता, नहीं मांगा तो इनके अहंकार को ठेस लगती है ।'

घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरंभ हुआ था वह अंत तक चलता ही रहा । छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थीं यह सोचकर विस्मय होता है । कारागार में जो संपन्न परिवारों की सत्याग्रही माताएँ थीं, उनके बच्चों के लिए बाहर से न जाने कितना मेवा–मिष्ठान्न आता रहता था। सुभद्रा जी की आर्थिक परिस्थितियों में जेल–जीवन का ए और सी क्लास समान ही था। एक बार जब भूख से रोती बालिका को बहलाने के लिए कुछ नहीं मिल सका तब उन्होंने अरहर दलनेवाली महिला–कैदियों से थोड़ी–सी अरहर की दाल ली और उसे तवे पर भून कर बालिका को खिलाया। घर आने पर भी उनकी दशा द्रोणाचार्य जैसी हो जाती थी, जिन्हें दूध के लिए मचलते हुए बालक अश्वत्थामा को चावल के घोल से सफेद पानी दे कर बहलाना पड़ा था। पर इन परीक्षाओं से उनका मन न कभी हारा न उसने परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए कोई समझौता स्वीकार किया।

उनके मानसिक जगत में हीनता की किसी ग्रन्थि के लिए कभी अवकाश नहीं रहा, घर से बाहर बैठ कर वे कोमल और ओज भरे छंद लिखने वाले हाथों से गोबर के कंडे पाथती थीं। घर के भीतर तन्मयता से आँगन लीपती थीं, बर्तन मांजती थीं। आँगन लीपने की कला में मेरा भी कुछ प्रवेश था, अतः प्रायः हम दोनों प्रतियोगिता के लिए आँगन के भिन्न–भिन्न छोरों से लीपना आरम्भ करते थे। लीपने में हमें अपने से बड़ा कोई विशेषज्ञ मध्यस्थ नहीं प्राप्त हो सका, अतः प्रतियोगिता का परिणाम सदा अघोषित ही रह गया पर आज मैं स्वीकार करती हूँ कि ऐसे कार्य में एकांत तन्मयता केवल उसी गृहिणी में संभव है जो अपने घर की धरती को समस्त हृदय से चाहती हो और सुभद्रा ऐसी ही गृहिणी थीं । उस छोटे से अधबने घर की छोटी–सी सीमा में उन्होंने क्या नहीं संगृहीत किया। छोटे–बड़े पेड़, रंग–बिरंगे फूलों के पौधों की क्यारियाँ,ऋतु के अनुसार तरकारियाँ, गाय, बच्छे आदि–आदि बड़ी गृहस्थी की सब सज्जा वहाँ विराट दृश्य के छोटे चित्र के समान उपस्थित थी । अपने इस आकार में छोटे साम्राज्य को उन्होंने अपनी ममता के जादू से इतना विशाल बना रखा था कि उसके द्वार पर न कोई अनाहूत रहा और न निराश लौटा। जिन संघर्षो के बीच से उन्हें मार्ग बनाना पड़ा वे किसी भी व्यक्ति को अनुदार और कटु बनाने में समर्थ थे। पर सुभद्रा के भीतर बैठी सृजनशीला नारी जानती थी कि काँटों का स्थान जब चरणों के नीचे रहता है तभी वे टूट कर दूसरों को बेधने की शक्ति खोते हैं। परीक्षाएं जब मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को क्षत–विक्षत कर डालती हैं तब उनमें उत्तीर्ण होने न होने का कोई मूल्य नहीं रह जाता ।

नारी के हृदय में जो गम्भीर ममता–सजल वीर–भाव उत्पन्न होता है वह पुरुष के उग्र शौर्य से अधिक उदात्त और दिव्य रहता है। पुरुष अपने व्यक्तिगत या समूहगत रागद्वेष के लिए भी वीर धर्म अपना

सकता है और अहंकार की तृप्ति–मात्र के लिए भी। पर नारी अपने सृजन की बाधाएँ दूर करने के लिए या अपनी कल्याणी सृष्टि की रक्षा के लिए ही रुद्र बनती है । अतः उसकी वीरता के समकक्ष रखने योग्य प्रेरणाएँ संसार के कोश में कम हैं । मातृशक्ति का दिव्य रक्षक उद्धारक रूप होने के कारण ही भीमाकृति चंडी, वत्सला अम्बा भी है, जो हिंसात्मक पाशविक शक्तियों को चरणों के नीचे दबाकर अपनी सृष्टि के मंगल की साधना करती है।

सुभद्रा में जो महिमामयी माँ थी, उसकी वीरता का उत्स भी वात्सल्य ही कहा जा सकता है। न उनका जीवन किसी क्षणिक उत्तेजना से संचालित हुआ न उनकी ओज भरी कविता वीर–रस की घिसी–पिटी लीक पर चली। उनके जीवन में जो एक निरन्तर निखरता हुआ कर्म का तारतम्य है वह ऐसी अंतरव्यापिनी निष्ठा से जुड़ा हुआ है जो क्षणिक उत्तेजना का दान नहीं मानी जा सकती। इसी से जहाँ दूसरों को यात्रा का अन्त दिखाई दिया वहीं उन्हें नई मंजिल का बोध हुआ।

थक कर बैठने वाला अपने न चलने की सफाई खोजते–खोजते लक्ष्य पा लेने की कल्पना कर सकता है, पर चलने वाले को इसका अवकाश कहाँ !

जीवन के प्रति ममता भरा विश्वास ही उनके काव्य का प्राण है –

सुख भरे सुनहले बादल
रहते हैं मुझको घेरे।
विश्वास प्रेम साहस हैं
जीवन के साथी मेरे।

मधुमक्षिका जैसे कमल से लेकर भटकटैया तक और रसाल से लेकर आक तक, सब–मधुरतिक्त एकत्र करके उसे अपनी शक्ति से एक मधु बनाकर लौटाती है, बहुत कुछ वैसा ही आदान–सम्प्रदान सुभद्रा जी का था। सभी कोमल–कठिन सह्य–असह्य अनुभवों का परिपाक दूसरों के लिए एक ही होता था। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनमें विवेचन की तीक्ष्ण दृष्टि का अभाव था। उनकी कहानियां प्रमाणित करती हैं कि उन्होंने जीवन और समाज की अनेक समस्यायों पर विचार किया और कभी अपने निष्कर्ष के साथ और कभी दूसरों के निष्कर्ष के लिए उन्हें बड़े चामत्कारिक ढंग से उपस्थित किया।

जब स्त्री का व्यक्तित्व उसके पति से स्वतंत्र नहीं माना जाता था तब वे कहती हैं, 'मनुष्य की आत्मा स्वतंत्र है। फिर चाहे यह स्त्री–शरीर के अंदर निवास करती हो चाहे पुरुष–शरीर के अंदर। इसी से पुरुष और स्त्री का अपना–अपना व्यक्तित्व अलग रहता है।' जब समाज और परिवार की सत्ता के विरुद्ध कुछ कहना अधर्म माना जाता था तब वे कहती हैं, समाज और परिवार व्यक्ति को बंधन में बाँधकर रखते हैं। ये बंधन देशकालानुसार बदलते रहते हैं और उन्हें बदलते रहना चाहिए वरना वे व्यक्तित्व के विकास में सहायता करने के बदले बाधा पहुंचाने लगते हैं। बंधन कितने ही अच्छे उद्देश्य से क्यों न नियत किए गए हों, हैं बंधन ही, और जहाँ बंधन है वहाँ असंतोष है तथा क्रांति है।'

परंपरा का पालन ही जब स्त्री का परम कर्त्तव्य समझा जाता था तब वे उसे तोडने की भूमिका बाँधती हैं, 'चिर–प्रचलित रूढियों और चिर–संचित विश्वासों को आघात पहुँचानेवाली हलचलों को हम

देखना–सुनना नहीं चाहते। हम ऐसी हलचलों को अधर्म समझकर उनके प्रति आँख मींच लेना उचित समझते हैं, किंतु ऐसा करने से काम नहीं चलता। यह हलचल और क्रांति हमें बरबस झकझोरती है और बिना होश में लाए नहीं छोड़ती।'

अनेक समस्याओं की ओर उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि सहज भाव से कहीं सरल कहानी का अन्त भी हमें झकझोर डालता है ।

वे राजनैतिक जीवन में ही विद्रोहिणी नहीं रहीं, अपने पारिवारिक जीवन में भी उन्होंने अपने विद्रोह को सफलतापूर्वक उतार कर उसे सृजन का रूप दिया था।

सुभद्रा जी के अध्ययन का क्रम असमय ही भंग हो जाने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय की शिक्षा तो नहीं मिल सकी, पर अनुभव की पुस्तक से उन्होंने जो सीखा उसे उनकी प्रतिभा ने सर्वथा निजी विशेषता दे दी है।

भाषा, भाव छंद की दृष्टि से नए, 'झांसी की रानी' जैसे वीर–गीत तथा सरल स्पष्टता में मधुर प्रगीत मुक्त, यथार्थ वादिनी मार्मिक कहानियाँ आदि उनकी मौलिक प्रतिभा के ही सृजन हैं।

ऐसी प्रतिभा व्यावहारिक जीवन को अछूता छोड़ देती तो आश्चर्य की बात होती।

पत्नी की अनुगामिनी, अर्धांगिनी आदि विशेषताओं को अस्वीकार कर उन्होंने भाई लक्ष्मणसिंह जी को पत्नी के रूप में ऐसा अभिन्न मित्र दिया जिसकी बुद्धि और शक्ति पर निर्भर रह कर अनुगमन किया जा सके।

अजगर की कुंडली के समान, स्त्री के व्यक्तित्व को कस कर चूर–चूर कर देनेवाले अनेक सामाजिक बंधनों को तोड़ फेंकने में उनका जो प्रयास लगा होगा, उसका मूल्यांकन आज संभव नहीं है।

उस समय बच्चों के लालन–पालन में मनोविज्ञान को इतना महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं मिला था और प्रायः सभी माता–पिता बच्चों को शिष्टता सिखाने में स्वयं अशिष्टता की सीमा तक पहुंच जाते थे। सुभद्रा जी का कवि–हृदय यह विधान कैसे स्वीकार कर सकता था! अतः उनके बच्चों को विकास का जो मुक्त वातावरण मिला उसे देखकर सब समझदार निराशा से सिर हिलाने लगे। पर जिस प्रकार यह सत्य है कि सुभद्रा जी ने अपने किसी बच्चे को उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ करने के लिए बाध्य नहीं किया, उसी प्रकार यह भी सत्य है कि किसी बच्चे ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया जिससे उसकी महीयसी मां को किंचित् भी क्षुब्ध होने का कारण मिला हो। उनके वात्सल्य का विधान ही अलिखित और अटूट था।

अपनी संतान के भविष्य को सुखमय बनाने के लिए उनके निकट कोई भी त्याग अकरणीय नहीं रहा। पुत्री के विवाह के विषय में तो उन्हें अपने परिवार से भी संघर्ष करना पड़ा।

उन्होंने एक क्षण के लिए भी इस असत्य को स्वीकार नहीं किया कि जातिवाद की संकीर्ण तुला पर ही वर की योग्यता तोली जा सकती है। इतना ही नहीं, जिस कन्यादान की प्रथा का सब मूक–भाव से पालन करते आ रहे थे उसी के विरूद्ध उन्होंने घोषणा की, 'मैं कन्यादान नहीं करूँगी। क्या मनुष्य मनुष्य को दान करने का अधिकारी है?क्या विवाह के उपरांत मेरी बेटी मेरी नहीं रहेगी?' उस समय तक किसी ने, और विशेषतः किसी स्त्री ने ऐसी विचित्र और परम्परा–विरुद्ध बात नहीं कही थी।

देश की जिस स्वतंत्रता के लिए उन्होंने जीवन के वासंती सपने अँगारों पर रख दिए थे, उसकी प्राप्ति के उपरांत भी जब उन्हें सब ओर अभाव और पीड़ा दिखायी दी तब उन्होंने अपने संघर्षकालीन साथियों से भी विद्रोह किया । उनकी उग्रता का अंतिम परिचय तो विश्ववंद्य बापू की अस्थिविसर्जन के दिन प्राप्त हुआ। वे कई सौ हरिजन महिलाओं के जुलूस के साथ–साथ सात मील पैदल चलकर नर्मदा किनारे पहुँचीं। पर अन्य संपन्न परिवारों की सदस्याएं मोटरों पर ही जा सकीं। जब अस्थिप्रवाह के उपरान्त संयोजित सभा के घेरे में इन पैदल आने वालों को स्थान नहीं दिया गया तब सुभद्रा जी का क्षुब्ध हो जाना स्वाभाविक ही था। उनका क्षात्रधर्म तो किसी प्रकार के अन्याय के प्रति क्षमाशील हो नहीं सकता था । जब उन हरिजनों को उनका प्राप्य दिला सकीं तभी वे स्वयं सभा में सम्मिलित हुईं।

सातवीं और पाँचवीं कक्षा की विद्यार्थिनियों के सख्य को सुभद्रा जी के सरल स्नेह ने ऐसी अमिट लक्ष्मण–रेखा से घेर कर सुरक्षित रखा कि समय उस पर कोई रेखा नहीं खींच सका। अपने भाई–बहिनों में सबसे बड़ी होने के कारण मैं अनायास ही सबकी देख–रेख और चिंता की अधिकारिणी बन गई थी। परिवार में जो मुझसे बड़े थे उन्होंने भी मुझे ब्रह्मसूत्र की मोटी पोथी में आँख गड़ाए देखकर अपनी चिंता की परिधि से बाहर समझ लिया था। पर केवल सुभद्रा पर न मेरी मोटी पोथियों का प्रभाव पड़ा न मेरी समझदारी का। अपने व्यक्तिगत सम्बन्धो में हम कभी कुतूहली बाल–भाव से मुक्त नहीं हो सके। सुभद्रा के मेरे घर आने पर भक्तिन तक मुझ पर रौब जमाने लगती थी। क्लास में पहुंच कर वह उनके आगमन की सूचना इतने ऊँचे स्वर में इस प्रकार देती कि मेरी स्थिति ही विचित्र हो जाती 'ऊ सहोदरा विचरिअऊ तो इनका देखै बरे आइ के अकेली सूने घर माँ बैठी हैं । अउर इनका कितबियन से फुरसत नाहिन बा'। एम.ए., बी.ए के विद्यार्थियों के सामने जब एक देहातिन बुढिया गुरु पर कर्त्तव्य–उल्लंघन का ऐसा आरोप लगाने लगे तो बेचारे गुरु की सारी प्रतिष्ठा किरकिरी हो सकती थी। पर इस अनाचार को रोकने का कोई उपाय नहीं था। सुभद्रा जी के सामने न भक्तिन को डांटना संभव था न उसके कथन की उपेक्षा करना। बंगले में आकर देखती कि सुभद्रा जी रसोई घर में या बरामदे में भानुमती का पिटारा खोले बैठी हैं और उसमें से अद्भुत वस्तुएं निकल रहीं हैं छोटी–छोटी पत्थर या शीशे की प्यालियाँ, मिर्च का अचार, बासी पूरी, पेड़े, रंगीन चकला–बेलन, चुटीली, नीली–सुनहली चूडियाँ आदि–आदि सब कुछ मेरे लिए आया है, इस पर कौन विश्वास करेगा ! पर वह आत्मीय उपहार मेरे निमित्त ही आता था।

ऐसे भी अवसर आ जाते थे जब वे किसी कवि–सम्मेलन में आते–जाते प्रयाग उतर नहीं पाती थीं और मुझे स्टेशन जाकर ही उनसे मिलना पड़ता था। ऐसी कुछ क्षणों की भेंट में भी एक दृश्य की अनेक आवृत्तियां होती ही रहती थीं। वे अपने थैले से दो चमकीली चूडियाँ निकालकर हँसती हुई पूछतीं, 'पसंद हैं? मैंने दो तुम्हारे लिए, दो अपने लिए खरीदी थीं। तुम पहनने में तोड़ डालोगी। लाओ अपना हाथ, मैं पहना देती हूँ।' पहन लेने पर वे बच्चों के समान प्रसन्न हो उठतीं।

हम दोनों जब साथ रहती थीं तब बात में एक मिनिट और हँसी में पांच मिनट का अनुपात रहता था। इसी से प्रायः किसी सभा–समिति में जाने के पहले न हँसने का निश्चय करना पड़ता था। एक दूसरे की ओर बिना देखे गंभीर भाव से बैठे रहने की प्रतिज्ञा करके भी वहाँ पहुंचते ही एक–न–एक वस्तु या दृश्य सुभद्रा के कुतूहली मन को आकर्षित कर लेता और मुझे दिखाने के लिए वे चिकोटी तक काटने से नहीं

चूकतीं। तब हमारी शोभा–सदस्यता की जो स्थिति हो जाती थी, उसका अनुमान सहज है।

अनेक कवि–सम्मेलनों में हमने साथ भाग लिया था, पर जिस दिन मैंने अपने न जाने का निश्चय और उसका औचित्य उन्हें बता दिया उस दिन से अन्त तक कभी उन्होंने मेरे निश्चय के विरुद्ध कोई आग्रह नहीं किया । आर्थिक स्थितियाँ उन्हें ऐसे निमंत्रण स्वीकार करने के लिए विवश कर देती थीं, परंतु मेरा प्रश्न उठते ही वे कह देती थीं, 'मैं तो विवशता से जाती हूँ, पर महादेवी नहीं जाएगी, नहीं जाएगी।'

साहित्य–जगत में आज जिस सीमा तक व्यक्तिगत स्पर्द्धा ईर्ष्या–द्वेष है, उस सीमा में तब नहीं था, यह सत्य है । पर एक दूसरे के साहित्य–चरित्र–स्वभाव सम्बन्धी निंदा–पुराण तो सब युगों में नानी की कथा के समान लोकप्रियता पा लेता है । अपने किसी भी परिचित–अपरिचित साहित्य–साथी की त्रुटियों के प्रति सहिष्णु रहना और उसके गुणों के मूल्यांकन में उदारता से काम लेना सुभद्रा जी की निजी विशेषता थी । अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें असंभव थी ।

वसंत पंचमी को पुष्पाभरणा, आलोकवसना धरती की छवि आँखों में भरकर सुभद्रा ने विदा ली। उनके लिए किसी अन्य विदा की कल्पना ही कठिन थी।

एक बार बात करते–करते मृत्यु की चर्चा चल पड़ी थी। मैंने कहा, 'मुझे तो उस लहर की–सी मृत्यु चाहिए जो तट पर दूर तक आकर चुपचाप समुद्र में लौट कर समुद्र बन जाती है।' सुभद्रा बोली, 'मेरे मन में तो मरने के बाद भी धरती छोडने की कल्पना नहीं है। मैं चाहती हूँ, मेरी एक समाधि हो, जिसके चारों और नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते रहें, स्त्रियां गाती रहें ओर कोलाहल होता रहे। अब बताओ तुम्हारी नामधाम रहित लहर से यह आनन्द अच्छा है या नहीं।'

उस दिन जब उनके पार्थिव अवशेष को त्रिवेणी ने अपने श्यामल–उज्ज्वल अंचल में समेट लिया तब नीलम–फलक पर श्वेत चन्दन से बने उस चित्र की रेखाओं में बहुत वर्षों पहले देखा एक किशोर–मुख मुस्कराता जान पड़ा।

'यहीं कहीं पर बिखर गई वह छिन्न विजय माला सी !'

शब्दार्थ

वार्धक्य – बुढ़ापा	अनाहूत –बुलाया न गया हो, अनामंत्रित
अतीत – बीता हुआ समय	उत्स –झरना, जल का स्रोत
कोटि – श्रेणी	मधुमक्षिका –मधुमक्खी
अन्वेषिका –खोजने वाली	रसाल – आम
कटु–तिक्त –कड़वा–तीखा	परिपाक –अच्छी तरह पका हुआ
उत्फुल्ल –खिला हुआ, विकसित	{ुब्ध – क्रुद्ध, चिन्तित
दीप्ति – चमक	पार्थिव –पृथ्वी सम्बन्धी, मिट्टी आदि से निर्मित
देहयष्टि – शारीरिक गठन, कद काठी	सन्नद्ध – बँधा हुआ, आमादा

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. उस युग में कविता रचना माना जाता था –

   (अ) अपराध (ब) साहस

   (स) श्रेष्ठ (द) शान्ति ( )

2. जहाँ बंधन है वहाँ –

   (अ) सहयोग है (ब) असंतोष और क्रान्ति है

   (स) विद्रोह है (द) निराशा है ( )

3. सुभद्रा ने अन्तिम विदा किस दिन ली–

   (अ) नागपंचमी को (ब) पूर्णिमा को

   (स) वसंत पंचमी को (द) अमावस्या को ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. दोनों बाल सखियाँ किन कक्षाओं में पढ़ती थीं?
2. सुभद्रा के पति का क्या नाम था?
3. नारी रूद्र कब बनती है?
4. सुभद्रा जी के काव्य का प्राण क्या था?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ''क्या तुम कविता लिखती हो'' का दूसरी ने क्या उत्तर दिया?
2. लेखिका ने सुभद्रा के व्यक्तित्व का कैसा चित्र प्रस्तुत किया है?
3. ''सुभद्रा जी की हंसी संक्रामक भी कम न थी'' से क्या तात्पर्य है?
4. ''घर आने पर उनकी दशा द्रोणाचार्य जैसी हो जाती थी।'' का क्या अभिप्राय है?
5. सुभद्रा जी की तुलना मधुमक्षिका से क्यों की है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''सुभद्रा ऐसी ही गृहणी थीं'' के आधार पर उनके गृहस्थी सम्बन्धी कार्यों पर प्रकाश डालिए?
2. ''वे राजनैतिक जीवन में ही नहीं पारिवारिक जीवन में भी विद्रोहिणी थीं'' के आधार पर सुभद्रा के व्यक्तिव पर प्रकाश डालिए ?
3. सुभद्रा जी का महादेवी के प्रति अपार स्नेह अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए ?
4. ''उनके वात्सल्य का विधान ही अलिखित और अटूट था'' के आधार पर अपने बच्चों के प्रति सुभद्रा जी के निभाये दायित्वों को समझाईये

भारत के महान वैज्ञानिक– सर जगदीश चन्द्र बोस

–परमहंस योगानंद

लेखक–परिचय

देवात्मा हिमालय सृष्टि के प्रारम्भ से ही सम्पूर्ण विश्व की जिज्ञासा तथा प्रेरणा का केन्द्र रहा है। जहाँ देवता इसकी प्राकृतिक सुषमा और वैभव से अभिभूत होकर हिमालय की वादियों में रमण करते रहे, जहाँ चक्रवर्ती सम्राट, ऋषि, मुनि, तपस्वी तथा सामान्य जन जिस हिमालय को मोक्ष की कामना से लालायित होकर अपना सर्वस्व समर्पित करते आये हों, उसी हिमालय से सटा हुआ नगर है गोरखपुर । जिसमें एक बंगाली परिवार में भगवती चरण घोष के यहाँ एक बालक का जन्म हुआ। माता–पिता के आध्यात्मिक वृत्ति के होने के कारण बालक (घर का नाम मुकुन्द) का झुकाव आध्यात्म की ओर हो गया। इस अध्यात्मवृत्ति के शमन हेतु मुकुन्द उस समय के प्रख्यात संतों, संन्यासियों से मिलता रहा इसी क्रम में मुकुन्द की भेंट युक्तेश्वर गिरि जी महाराज से हुई। युक्तेश्वर गिरि जी के कठोर अनुशासन, संयम और स्नेह की छाया में मुकुन्द में योगानन्द का दिव्य रूप साकार होने लगा। अध्यात्म के साथ मुकुन्द ने प्रारम्भिक तथा उच्च शिक्षा भी प्राप्त की। अपने सद्गुरू की इच्छानुसार सन् 1914 में संन्यास ग्रहण किया तथा सन् 1920 में मुकुन्द (योगानन्द) अमेरीका के बोस्टन मे आयोजित धर्म की अन्तर्राष्ट्रीय काँग्रेस में भाग लेने के लिए भारतीय प्रतिनिधि बनकर चले गये इसके साथ ही अमेरीका एक प्रकार से उनका घर बन गया। करीब पाँच वर्ष पश्चात् योगानन्द ने आत्मानुभूति मुख्यालय के साथ फैलोशिप की स्थापना कर अध्यात्म को जनोन्मुखी बनाया। गुरू से प्राप्त क्रियायोग की दीक्षा जिज्ञासु जनों को दी। इन्होंने कई ग्रंथों की रचना की, जिसमें योगी कथामृत (Autobiography of a Yogi) विश्व की बहुचर्चित तथा सर्वश्रेष्ठ आत्म कथाओं में से रही है। 7 मार्च, 1952 को योगानन्द का आध्यात्मिक देह त्याग समूचे विश्व तथा विज्ञान के लिए आश्चर्य तथा चर्चा का विषय रहा । इनका देश में ही नहीं बल्कि विदेश में भी कई श्रेष्ठ महानुभावों से घनिष्ठ सम्पर्क रहा, जिनमें भारतीय महापुरुषों में महात्मा गाँधी, सर जगदीश चन्द्र बोस तथा विश्व कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर मुख्य थे।

पाठ–परिचय

भारत के महान वैज्ञानिक सर जगदीश चन्द्र बोसः परमहंस योगानन्द की आत्मकथा 'योगी कथामृत' में से लिया गया अंश है। अध्यात्मभाव से प्रेरित मुकुन्द (योगानन्द) जिज्ञासावश जगदीश चन्द्र बोस से साक्षात्कार करते हैं उनके ऋषि तुल्य वैज्ञानिक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनकी प्रयोगशाला के उद्घाटन अवसर पर तथा बाद में मिलते हैं तथा दोनों की धनिष्ठता आत्मा के स्तर तक पहुँच जाती है। बोस ने प्रयोगशाला में फर्न के पौधे तथा टिन के धातु पत्र में क्रेस्कोग्राफ के माध्यम से प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि पेड़–पौधों में भी संवेदनशील स्नायुतंत्र होता है तथा उनका जीवन विभिन्न भावनाओं से युक्त होता हैं। यहाँ तक कि टिन धातु के पत्र में भी संवेदना का संचार होता है। जगदीश चन्द्र बोस के समाष्टि मूलक उदात् विचार तथा जड़ चेतन के प्रति एकात्म भाव तथा संवेदना वर्तमान विश्व के प्रस्तर तुल्य जीवन में स्नेह और सरसता का संचार करेगी। यही इस आत्मकथांश का मूल स्वर है।

''जगदीश चन्द्र बोस ने वायरलेस का आविष्कार मार्कोनी से पहले ही कर लिया था।''

यह उत्तेजक टिप्पणी सुनकर मैं रास्ते के किनारे खड़े होकर विज्ञान विषयक चर्चा कर रहे प्राध्यापकों के एक दल के पास जाकर खड़ा हो गया। यदि उनमें सम्मिलित होने के पीछे मेरी भावना जाति के अभिमान की थी, तो मुझे उसका खेद हैं। भारत न केवल गूढ़ चिन्तन में, वरन् भौतिक विज्ञान में भी प्रमुख भूमिका निभा सकता है इस बात के प्रमाण में अपनी गहरी अभिरूचि को मैं अस्वीकार नहीं कर सकता।

''आप कहना क्या चाहते हैं, सर\''

प्राध्यापक महोदय ने प्रसन्नतापूर्वक स्पष्टीकरण दिया। ''वायरलेस कोहीरर (Wireless Coherer) और विद्युत तरंगों की वक्रता दर्शाने वाले एक यंत्र का आविष्कार सबसे पहले बोस ने किया था। परन्तु इस भारतीय वैज्ञानिक ने अपने आविष्कारों से कोई आर्थिक लाभ उठाने की चेष्टा नहीं की। शीघ्र ही उन्होंने अपना ध्यान अजैव से जैव जगत् की ओर मोड़ दिया। वनस्पति शास्त्रज्ञ के रूप में उनके द्वारा किये गये क्रांतिकारी आविष्कार उनके भौतिक विज्ञानी के रूप में किये गये मौलिक आविष्कारों से भी कहीं अधिक बढ़–चढ़कर हैं।''

मेरे ज्ञान में वृद्धि करने वाले प्राध्यापक महाशय का मैंने विनम्रतापूर्वक धन्यवाद किया। उन्होंने आगे कहा' ''यह महान् वैज्ञानिक प्रेसिडेन्सी कॉलेज में मेरे सहाध्यापक हैं।''

दूसरे ही दिन मैं उस ऋषितुल्य महान् ज्ञानवेता से मिलने उनके घर गया जो मेरे घर के पास ही था। लम्बे समय से मैं दूर से ही उनके प्रति श्रद्धाभाव रखता आ रहा था। गम्भीर, प्रशान्त और एकान्तप्रेमी वनस्पति शास्त्रज्ञ ने शिष्टतापूर्वक मेरा स्वागत किया। उनकी आयु पचास से साठ वर्ष के बीच थी। वे घने केश, विस्तीर्ण ललाट तथा स्वप्निल नेत्रों के रूपवान व्यक्ति थे। उनका शरीर सुगठित था। बोलने में उनका विशुद्ध उच्चारण उनके शुरू से ही वैज्ञानिक स्वभाव को दर्शाता था।

''पश्चिम की वैज्ञानिक सोसाइटियों की सभाओं से भाग लेकर मैं हाल ही में वापस आया हूँ। मेरे द्वारा आविष्कृत जीवन की अविभाज्य एकता दर्शाने वाले उपकरणों में उनके सदस्यों ने गहरी रूचि दिखायी। बोस क्रेस्कोग्राफ (Crescograph) की परिवर्धन–शक्ति (Magnifying Power) एक करोड़ गुना है। माइक्रोस्कोप तो केवल कुछ सहस्त्र गुना ही परिवर्धन करता है, फिर भी उसने जीवविज्ञान को तीव्र गति प्रदान कर दी, जीवविज्ञान में प्राण फूँक दिये। क्रेस्कोग्राफ अगणित मार्ग खोलता है।''

''सर! आपने विज्ञान की अमूर्त बाहों से पूर्व और पश्चिम के आलिंगनबद्व होने की प्रक्रिया को तेज करने के लिये बहुत कुछ किया है।''

''मेरी शिक्षा कैम्ब्रिज में हुई। प्रयोगों के आधार पर ही किसी भी सिद्धान्त की सूक्ष्म से सूक्ष्म जाँच करने की पाश्चात्य पद्धति कितनी सराहनीय है! यह प्रयोगमूलक कार्यपद्धति मुझे अपनी पौर्वात्य विरासत में मिली आत्मपरीक्षण की क्षमता के साथ जुड़कर और भी अधिक प्रभावी हो गयी। इन दोनों की युति ने मुझे दीर्घकाल से अबोल रहे प्रकृति–जगत् के मौन को तोड़ने में समर्थ बनाया। सारे भेद खोल देने वाले मेरे क्रेस्काग्राफ के रेखाचित्र प्रमाण हैं सन्देह करने वाले किसी भी व्यक्ति के लिये कि पेड़–पौधों में भी संवेदनशील स्नायु–तंत्र होता है और उनका जीवन विभिन्न भावनाओं से युक्त भी होता है। प्रेम, घृणा,

आनन्द, भय, सुख, दुःख, मूर्च्छा और अन्य उत्तेजनाओं के प्रति असंख्य प्रकार की प्रतिक्रियाओं की भावानुभूति जिस प्रकार सब प्राणियों को होती है, उसी प्रकार सब पेड़–पौधों को भी होती है।''

''सर आपके इस क्षेत्र में आगमन से पहले तो सारी सृष्टि में व्याप्त जीवन की अद्वितीय धड़कन एक कवि की कल्पना मात्र लगती होगी। एक सन्त को मैं कभी जानता था जो कभी कोई फूल नहीं तोड़ते थे। वे कहते थेः 'गुलाब के पौधे से मैं उसका सौन्दर्याभिमान कैसे छीन लूँ\ अपनी उद्दण्डता से उसे विवस्त्र करके उसके आत्म–सम्मान को धक्का कैसे पहुँचाऊँ\ उनके उन सहानुभूतिपूर्ण शब्दों को आपके आविष्कारों ने अक्षरशः यथार्थ सिद्ध कर दिया है।''

''कवि सत्य से अंतरंग होता है, जब कि वैज्ञानिक अजीबोगरीब ढंग से उस तक पहुँचने का प्रयास करता है। किसी दिन मेरी प्रयोगशाला में आकर क्रेस्कोग्राफ के असंदिग्ध प्रमाणों को देख लो।''

कृतज्ञतापूर्वक मैंने आमन्त्रण स्वीकार कर उन से विदा ली। बाद में मैंने सुना कि उन्होंने प्रेसिडेन्सी कॉलेज छोड़ दिया है और अब वे कोलकाता में एक अनुसन्धान केन्द्र स्थापित करने की योजना बना रहे हैं।

जब बोस इंस्टिट्यूट का उद्घाटन हुआ तब मैं उस उद्घाटन समारोह में उपस्थित था। सैंकडों उत्साही लोग संस्थान के परिसर में इधर से उधर घूम रहे थे । विज्ञान के इस नये पीठ की कलात्मकता ओर आध्यात्मिक प्रतीकात्मकता को देखकर मैं मुग्ध हुआ। उसका प्रवेशद्वार सुदूर स्थित किसी प्राचीन मंदिर का अवशेष है। कमलों से भरे एक जलकुंड के पीछे स्थित मशालधारी स्त्री मूर्ति नारी के लिये अमर प्रकाश–दात्री के रूप में भारत के आदर को सूचित करती है। एक उद्यान में अगोचर ब्रह्म को समर्पित एक छोटा–सा मंदिर है। मंदिर में मूर्तिविहीन रिक्त स्थान ईश्वर की निराकारता को सूचित करता है।

इस उद्घाटन के महान् अवसर पर सर जगदीशचन्द्र बोस का भाषण ऐसा लग रहा था मानों वह सीधे किसी अन्तः प्रेरित प्राचीन ऋषि के मुख निःसृत हो रहा हो।

''इस संस्था को मैं आज केवल एक प्रयोगशाला के रूप में नहीं, वरन् एक मंदिर के रूप में समर्पित करता हूँ, उनकी आदरणीय महानता खचाखच भरे सभागृह पर एक अदृश्य चादर के समान छा गयी। ''अपनी खोज में मैं कब पदार्थ विज्ञान और प्रकृति विज्ञान के सीमा क्षेत्र में पहुँच गया, मुझे पता ही नहीं चला। मेरा आश्चर्य बढ़ता ही गया जब मैंने देखा कि सजीव जगत् और निर्जीव जगत् के बीच की सीमारेखाएँ मिटती जा रही हैं और स्पर्शबिन्दु उभरते जा रहे हैं। मैंने देखा कि निर्जीव जगत् निष्क्रिय नहीं थाः वह तो असंख्य शक्तियों के प्रभाव में पुलकित हो रहा था।

''सब में एकसमान प्रतिक्रिया धातु, वनस्पति और प्राणी को एक ही सामान्य नियम में बाँधती प्रतीत हुई। वे सब थकान और खिन्नता के तत्वतः एकसमान लक्षण प्रदर्शित करते थे जिनमें पुनः तरो–ताजा और हर्षोत्फुल्ल होने की संभावनाएँ बनी रहती थीं। मृत्यु के साथ जुड़ी हुई स्थायी प्रतिक्रियाहीनता के प्रदर्शन में भी सब एक समान थें । इस विराट सामान्यत्व से विस्मय विभोर होकर मैंने बहुत बड़ी आशा के साथ अपने प्रयोगों के परिणामों को रॉयल सोसायटी के समक्ष रखा। परन्तु वहाँ उपस्थित प्रकृति विज्ञानियों ने मुझे उनके लिये सुरक्षित क्षेत्रों पर अतिक्रमण करने के बदले उस पदार्थ–विज्ञान के क्षेत्र तक ही अपने अनुसंधान को सीमित रखने की सलाह दी जिसमें मेरी सफलता का भरोसा था । मैंने अनजाने में एक अपरिचित जाति

व्यवस्था के क्षेत्र में घुसकर उसके शिष्टाचार का उल्लंघन कर दिया था।

''वहाँ अनजाने में एक धर्मशास्त्रीय पूर्वाग्रह भी कार्यरत था जो अज्ञान को भी धर्म के समान प्रश्नातीत मानता है। यह प्रायः भुला दिया जाता है कि जिस परमसता ने हमें चारों ओर से सृष्टि के इस नित्य बढ़ते ही जाते रहस्य से घेर रखा है, उसी ने प्रश्न करने और समझने की इच्छा भी हम में प्रतिष्ठापित कर दी है। अनेक वर्षों तक लोगों की गलतफहमियों का शिकार बनते रहने से एक बात मेरी समझ में आ गयी– विज्ञान के उपासक का जीवन अनिवार्य रूप से अनन्त संघर्ष से भरा होता है। लाभ और हानि, सफलता और विफलता को एक समान मानते हुए उसे अपना जीवन प्रेमश्रद्वायुक्त अर्ध्य के रूप में अर्पण करना पड़ता है।

''कालान्तर में विश्व की प्रमुख वैज्ञानिक सोसायटियों ने मेरे सिद्वान्तों और निष्कर्षों को स्वीकार करके विज्ञान में भारत के योगदान को मान्य किया। जो कुछ भी छोटा या सीमित हो, वह क्या भारत के मन को कभी तृप्त कर सकता है! एक अखण्ड जीवन्त परंपरा और पुनर्योवन प्राप्त करने की एक जीवनप्रद शक्ति के द्वारा इस भूमि ने अगणित परिवर्तनों में बार–बार अपना कायाकल्प किया है। भारत में सदा ही ऐसे लोग उत्पन्न होते आये हैं जिन्होंने समय के तात्कालिक और मोहक पुरस्कार को ठुकराकर जीवन के सर्वोच्च अभीष्टों को पाने का प्रयास किया है– अकर्मण्य परित्याग द्वारा नहीं, वरन् कर्मठ, कठोर संघर्ष द्वारा। संघर्ष को अस्वीकार करने वाले दुर्बल के पास कुछ प्राप्त न कर पाने के कारण त्यागने के लिये भी कुछ नहीं होता। जिसने संघर्ष कर विजय प्राप्त की हो, वही केवल संसार को अपनी विजय के अनुभव का फल प्रदान कर उसे समृद्ध कर सकता है।

''इस बोस प्रयोगशाला में जड़ पदार्थों की प्रतिक्रिया पर अब तक किये जा चुके कार्य से और वनस्पति–जीवन के अप्रत्याशित तथ्य सामने आ जाने से पदार्थ विज्ञान, प्रकृति विज्ञान, चिकित्सा, कृषि और यहाँ तक कि मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी, अनुसन्धान के अत्यंत विस्तृत क्षेत्र खुल गये हैं। जिन उलझनों के बारे में अब तक यह माना जाता था कि उन्हें सुलझाया नहीं जा सकता, वे भी अब प्रयोगात्मक अन्वेषण के कार्यक्षेत्र में आ गयी हैं।

''परन्तु कठोर सटीकता के बिना उच्च सफलता नहीं मिल सकती। इसीलिये प्रवेश कक्ष में अपने–अपने केस में रखे गये मेरे द्वारा आविष्कृत अतिसंवेदनशील उपकरणों और वैज्ञानिक यंत्रों की लम्बी–लम्बी कतारें लगी हैं। वे दृश्यमान आभास के पीछे छिपे सत्य को खोजने के लिये आवश्यक दीर्घकालिक अनवरत प्रयत्न की व मानव के सीमित सामर्थ्य की परिसीमाओं को लांघने के लिये आवश्यक अविराम कठोर परिश्रम, लगन और उद्योगशीलता की गाथा सुनाते हैं। सभी आविष्कारक वैज्ञानिक जानते हैं कि वास्तविक प्रयोगशाला तो मन हैं, जहॉ वे माया के पर्दे के पीछे छिपे सत्य के नियमों को खोज निकालते हैं।

''यहाँ जो लेक्चर दिये जायेंगे वे किसी दूसरे से प्राप्त ज्ञान की पुनरावृत्ति मात्र नहीं होंगें। उनमें इन कक्षों में प्रथम बार सिद्ध किये गये नये आविष्कारों का ज्ञान दिया जायेगा। इस संस्था के कार्य–विवरण के नियमित प्रकाशनों द्वारा भारत के योगदान समस्त विश्व में पहुँच जायेंगे। वे सार्वजनिक सम्पत्ति बन जायेंगे। कभी भी किसी भी बात का 'पेटेंट' नहीं लिया जायेगा। हमारी राष्ट्रीय संस्कृति का सार ही यह है

कि हमें ज्ञान का प्रयोग केवल अपने लाभ के लिये करने की संस्कृतिहीनता से सदैव दूर रहना चाहिये।

''मेरी यह भी इच्छा है कि इस संस्था की सुविधाएँ जहाँ तक सम्भव हो सके, सभी देशों के अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिये उपलब्ध हों। इसमें मैं अपने देश की परम्पराओं को आगे चलाने का प्रयास कर रहा हूँ। पच्चीस शताब्दियों पूर्व भी भारत नालंदा और तक्षशिला के अपने प्राचीन विश्वविद्यालयों में विश्व के सभी हिस्सों से आते छात्रों को ज्ञानप्राप्ति की सुविधा उपलब्ध कराता था।

''विज्ञान न तो पूर्व का है न पश्चिम का, बल्कि अपनी सार्वलौकिकता के कारण वह सब देशों का है, परन्तु फिर भी भारत इसमें महान् योगदान देने के लिये विशेष रूप से योग्य है। भारतीयों की ज्वलंत कल्पनाशक्ति तो ऊपर–ऊपर परस्परविरोधी लगने वाले तथ्यों की गुत्थी से भी नया सूत्र निकाल सकती है, परन्तु एकाग्रता की आदत ने इसे रोक रखा है। संयम मन को अनंत धीरज के साथ सत्य की खोज में लगाये रखने की शक्ति प्रदान करता है।''

उस महान् वैज्ञानिक के उन अंतिम शब्दों को सुनकर मेरी आँखें छलछला उठीं। यह ''धीरज'' ही क्या सचमुच भारत का पर्यायवाची शब्द नहीं बन गया है, जिसने काल और इतिहासकार, दोनों को ही समान रूप से अचंभित कर रखा है।

उद्घाटन दिवस के थोड़े दिनों बाद मैं उस अनुसन्धान केन्द्र में फिर से गया। उस महान् वनस्पतिशास्त्रज्ञ को अपने वचन का स्मरण था। वे मुझे अपनी शांत प्रयोगशाला में ले गये।

''अब मैं इस फर्न के पौधे को क्रेस्कोग्राफ लगाता हूँ, इसकी गतिविधियों का अनेक गुना परिवर्धित चित्र उभरेगा। इसी मात्रा में यदि घोंघे की रेंगने की क्रिया को परिवर्धित किया जाय तो घोंघा एक्सप्रेस ट्रेन की गति से चलता दिखायी देगा।''

मेरी दृष्टि उत्सुकतावश पर्दे पर लगी हुई थी जहाँ फर्न की परिवर्धित छाया दीख रही थी। सूक्ष्मातिसूक्ष्म जैव–क्रियाएँ भी अब स्पष्ट दिखायी दे रही थीं। मेरी मंत्रमुग्ध आँखों के सामने वह फर्न का पौधा अत्यंत धीरे–धीरे बढ़ रहा था । बोस महाशय ने पौधे की नोंक को धातु की एक छोटी–सी छड़ से छुआ। पर्दे पर चल रहा मूक–नृत्य हठात् रूक गया, जैसे ही छड़ हटायी वैसे ही उस की लयबद्ध थिरक पुनः शुरू हो गयी।

''तुमने देखा कैसे तनिक–सा भी बाह्य हस्तक्षेप संवेदनशील ऊत्तकों के लिये बाधक है,'' बोस महाशय ने कहा। ''देखो, मैं इसे क्लोरोफॉर्म दूँगा और फिर उसका प्रभाव नष्ट करने वाली औषधि भी।''

क्लोरोफॉर्म के प्रभाव ने विकास को पूर्णतः रोक दिया; उसका प्रभाव नष्ट करने वाली औषधि ने उसे पुनः शुरू कर दिया। पर्दे पर दिखने वाले विकास के संकेतों ने मुझे किसी सिनेमा के कथानक से भी अधिक तन्मयता के साथ जकड़ रखा था । बोस महाशय (यहाँ खलनायक की भूमिका में) ने उस फर्न के एक हिस्से में एक तीक्ष्ण औजार घुसा दिया; आकस्मिक फड़फड़ाहट ने दर्द का संकेत दिया। जब उन्होंने पौधे के तने को ब्लेड से अंशतः काट दिया तब छाया में तीव्र छटपटाहट दिखायी दी, फिर मृत्यु की अंतिम स्तब्धता में वह शांत हो गयी।

''एक विशाल वृक्ष को पहले क्लोरोफॉर्म देकर फिर उसका स्थानान्तरण करने में मैंने सफलता प्राप्त कर ली। साधारणतया वनों के ये राजा स्थानान्तरित करने के कुछ ही दिन बाद मर जाते हैं।'' उस

जीवनरक्षक युक्तिकौशल का वर्णन करते हुए बोस महाशय अत्यंत प्रसन्नता के साथ मुस्करा रहे थे। ''मेरे सूक्ष्मग्राही यंत्रों के रेखाचित्रों ने सिद्वकर दिया है कि पेड़–पौधों में रस संचार–प्रणाली होती है; प्राणियों में जैसे रक्तसंचार होता है, वैसे ही पेड़–पौधों में रस संचार होता है। पेड़–पौधों में रस की ऊर्ध्वगति को केवल केशिका आकर्षण (Capillary Attraction) सदृश किसी यांत्रिक क्रिया के आधार पर स्पष्ट नहीं किया जा सकता, जैसा कि सामान्यतया प्रयास किया जाता है। क्रेस्कोग्राफ ने इसे सजीव कोशिकाओं की क्रिया के रूप में दर्शाया है। पेड़ के अन्दर से लम्बी गोलाकार नली चलती है जिसमें क्रमिक वृत्तों से सिकुड़ने वाली लहरें उठती रहती हैं जो हृद्‌य का काम करती है! हम जितनी ही अधिक गहराई में जाकर देखेंगे उतनी ही अधिक स्पष्टता से इस सत्य का प्रमाण मिलता जाता है कि इस बहुविध प्रकृति का प्रत्येक रूप एक ही सूत्र में बँधा है।''

बोस महाशय ने एक अन्य यंत्र की ओर इशारा किया।

''मैं तुम्हें टिन के एक टुकड़े पर कुछ प्रयोग दिखाता हूँ। धातुओं की प्राणशक्ति उत्तेजना के प्रभाव में अनुकूल या प्रतिकूल प्रतिक्रिया दिखाती है। स्याही के निशान विभिन्न प्रतिक्रियाओं को चिह्नांकित करेंगे।''

मैं तल्लीन होकर आण्विक संरचना की लक्षणस्वरूप तरंगों को अंकित करने वाले रेखाचित्र (Graph) को देखने लगा। जब प्रोफेसर साहब ने टिन को क्लोरोफॉर्म लगाया तब कंपन–लेखन थम गया। जब धीरे–धीरे उस टिन की सामान्य अवस्था लौट आयी, तब वह पुनः शुरू हो गया। अब बोस महाशय ने एक विषैला रसायन लगाया। टिन के छटपटाते छोर के साथ–साथ सुई ने अद्‌भुत रूप से रेखाचित्र पर मृत्यु की सूचना अंकित कर दी। वैज्ञानिक महोदय ने कहाः

''बोस यंत्रों ने प्रदर्शित कर दिया है कि कैंची और मशीनरी में प्रयुक्त इस्पात सदृश धातु भी थकते हैं और बीच–बीच में विश्राम मिलने से उनमें पुनः ताजगी और कार्यक्षमता आ जाती है।विद्युत् प्रवाह या अति भारी दबाव से धातुओं में जीवन की धड़कन को गम्भीर क्षति पहुँचती है या वह धड़कन सदा के लिये रूक भी सकती है।''

उस कक्ष में चारों ओर रखे अथक प्रतिभा के मुखर प्रतीक, असंख्य आविष्कारों पर मैंने दृष्टि दौड़ायी।

''सर, यह दुःख की बात है कि आपके अद्‌भुत यंत्रों का पूर्ण लाभ उठाकर बड़े पैमाने पर कृषि–विकास को गति नहीं दी जा रही है। इनमें से कुछ यन्त्रों को त्वरित प्रयोगों में प्रयुक्त कर के खाद के विभिन्न प्रकारों का पौधों पर क्या प्रभाव पड़ता है।, यह देखना क्या सहज सम्भव नहीं हो सकता\''

''तुम ठीक कह रहे हो। भावी पीढ़ियाँ बोस यंत्रों को अगणित प्रकारों से प्रयोग में लायेंगी। वैज्ञानिक को उसके परिश्रम का तत्काल पुरस्कार कदाचित ही मिलता है, सृजनात्मक सेवा का आनन्द ही उसके लिये पर्याप्त है।''

उस अदम्य ऋषि के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त कर मैंने उनसे विदा ली। मैंने सोचा, ''उनकी अद्‌भुत प्रतिभा की विस्मयकारी उर्वरता क्या कभी निःशेष हो सकती है।

बढ़ते वर्षों के साथ उनकी प्रतिभा में कोई कमी नहीं आई। ''रेजोनेन्ट कार्डियोग्राफ'' नामक एक

जटिल यंत्र का आविष्कार करने के बाद बोस महाशय असंख्य भारतीय पेड़–पौधो के विस्तृत अनुसंधान में लग गये। किसी को कल्पना भी नहीं थी ऐसी–ऐसी उपयुक्त औषधियों की एक विराट भेषज–तालिका तैयार हो गयी। कार्डियोग्राफ ऐसी अचूक सटीकता के साथ तैयार किया गया है कि उससे एक सेकंड का शतांश तक रेखाचित्र में अंकित हो जाता है। पेड़–पौधे, प्राणी एवं मानव–शरीर की संरचना के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्पन्दन भी यह कार्डियोग्राफ अंकित कर लेता है। उस महान् वनस्पति–शास्त्रज्ञ ने भविष्यवाणी की कि वैद्यकीय अनुसंधान के लिये प्राणियों के अंगच्छेदन की आवश्यकता नहीं रहेगी; कार्डियोग्राफ के प्रयोग से पेड़–पौधों के अंगच्छेदन से ही काम चल जायेगा।

''किसी औषधि के पौधे और प्राणी पर एक साथ किये गये प्रयोग के परिणामों के अंकन से साफ पता चलता है कि उन दोनों पर उस औषधि के प्रभाव में आश्चर्यजनक समानता है,'' उन्होंने स्पष्ट किया। ''मनुष्य में जो कुछ भी है उस सब का पूर्वाभास पेड़–पौधों में विद्यमान है। वनस्पति जगत् पर प्रयोग प्राणियों और मानवों की यातना को कम करने में योगदान देंगे।

कई वर्षों बाद बोस महाशय के पथप्रदर्शक वनस्पति आविष्कारों की अन्य वैज्ञानिकों द्वारा पुष्टि की गयी। कोलम्बिया युनिवर्सिटी में १६३८ में किये गये शोध कार्य की वार्ता ''द न्यूयॉर्क टाइम्स'' में निम्नलिखित रूप में प्रकाशित हुई थीः

गत कतिपय वर्षों में यह निर्धारित हो चुका है कि जब मस्तिष्क और शरीर के अन्य हिस्सों के बीच तंत्रिकाएँ (Nerves) संदेश वहन करती हैं, तब छोटी–छोटी विद्युत् तरंगे निर्माण होती हैं। इन विद्युत् तरंगों को सूक्ष्मग्राही विद्युद्धारामापी यंत्रों (Galvanometers) से मापा गया और आधुनिक परिवर्धनकारी यंत्रों से इनका लक्ष–लक्ष गुना परिवर्धन किया गया। मानव या जीवित प्राणियों के तंत्रिका–तंतुओं (Nerve Fibres) में प्रवाहित होने वाली इन तंरगों का अध्ययन करने का कोई संतोषजनक तरीका इनकी अत्यंत तीव्र गति के कारण अब तक ढूँढा नहीं जा सका था।

डॉ. के. एस. कोल और डॉ. एच. जे. कर्टिस ने यह जानकारी दी कि उन्होंने इस बात को खोज निकाला है कि साधारणतया घरों में मछली–पात्र में डाला जाने वाला पौधा होता है, जिसे निटेला कहते हैं और जिसमें एक ही लम्बी कोशिका होती है, उसकी कोशिका में और तंत्री–तंतु की कोशिकाओं में पूर्ण समानता है, कोई भी भिन्नता नहीं है। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी पाया कि निटेला पौधे के तंतुओं को उत्तेजित किये जाने पर वे विद्युत् तरंगें निर्माण करते हैं जो, केवल गति को छोड़कर, अन्य सब दृष्टियों से प्राणी और मानव के तंत्री–तंतुओं में निर्माण होने वाली विद्युत् तरंगों के समान ही होती है। इस पौधे के तंतुओं की विद्युत् तरंगे प्राणियों के तंतुओं की विद्युत् तरंगों से कहीं धीमे चलती देखी गयी। इसलिये तंत्रिकाओं में प्रवाहित होने वाली विद्युत् तरंगों के प्रवाह के मन्दगति चलचित्र (Slow Motion Pictures) लेने के लिये कोलम्बिया युनिवर्सिटी के अनुसंधानकर्ताओं ने इस आविष्कार को तुरन्त उपयोग में लाया।

इस प्रकार निटेला पौधा मन और स्थूल जगत् के सीमाक्षेत्र के गुप्त रहस्यों की गूढ़लिपि का अर्थ जानने में एक प्रकार से रोसेटा पत्थर की भूमिका अदा कर सकता है।

कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर भारत के इस आदर्शवादी वैज्ञानिक के अंतरंग मित्र थे। उन्हें सम्बोधित कर कविवर ने निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी थीं:

हे तपस्वि डाको तूमि साममंत्रेजलदगर्जने,
''उत्तिष्ठत! निबोधत!'' डाको शास्त्र अभिमानीजने–
पाण्डित्येर पण्डतर्क हते। सुबृहत विश्वतले
डाको मूढ़ दाम्भि केरे। डाक दाओ तब शिष्य दले–
एकत्रे दौंड़ाक तारा तब होम–हुताग्नि घिरिया।
बार–बार ए भारत आपनाते आसूक फिरिया
निष्ठाय, श्रद्धाय, ध्याने–बसूक से अप्रमत्तचित्ते
लोभहीन, द्वन्द्वहीन, शुद्ध, शान्त गुरूर वेदिते।

हे तपस्वि! साममन्त्रों की जलद गम्भीर गर्जना से पुकारो–उठो! जागो!'' शास्त्राभिमानी जनों और कुतर्कों से आहत बुद्धि पण्डितों को पुकारो और उन्हे बेकार तर्कों का त्याग करने को कहों। उन मूढ़ दम्भियों को इस सुविस्तृत संसार में आने की प्रेरणा दो। अपने शिष्यों का भी आह्वान करो कि वे कर्त्तव्यरूपी यज्ञवेदी के चारों ओर एकत्रित हों, जिससे हमारा भारत, हमारा प्राचीन देश अपने सच्चे स्वरूप को पुनः प्राप्त करे और कर्त्तव्यनिष्ठा, श्रद्धा और ध्यान में अप्रमत्तचित्त होकर लोभहीन द्वन्द्वहीन, शुद्ध और शांत बनकर विश्वगुरू के आसन पर एक बार फिर अधिष्ठित हो।'

शब्दार्थ–

वक्रता – टेढ़ापन, विस्तीर्ण, विस्तृत, विशाल (बहुत बड़ा)
अमूर्त – निराकार, अबोल–मौन, अवाक्
अगोचर – अव्यक्त, जिसका अनुभव इन्द्रियों से न हो।
हर्षोत्फुल्ल – प्रसन्नता से खिला हुआ
स्तब्धता – स्थिरता, जड़ता
भेषज – द्वा या औषधि से उत्पन्न
क्रोस्कोग्राफ – पेड़–पौधों की संवेदना मापक यंत्र
मूढ़दम्भी – मूर्ख अंहकारी

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. योगी कथामृत किस महापुरूष से सम्बन्धित है।
   (क) युक्तेश्वर जी से (ख) महावतार बाबाजी से
   (ग) योगानंद जी से (घ) स्वामी प्रणवानंदजी से ( )
2. जगदीश चन्द्र बोस वैज्ञानिक थे–
   (क) परमाणु विज्ञान के (ख) जीव विज्ञान के

(ग) भूगर्भ शास्त्र के (घ) वनस्पति शास्त्र के ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्राध्यापक महोदय के अनुसार मार्कोनी से पहले वायरलेस का आविष्कार किसने किया था\
2. वनस्पति जगत के जीवन की अविभाज्य एकता तथा गति दर्शाने वाले यंत्र का नाम लिखिए।
3. जगदीश चन्द्र बोस के अंतरंग कवि मित्र का नाम लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. बोस के क्रेस्कोग्राफ की क्या विशेषता है\ लिखिए।
2. पौधे से फूल तोड़ने पर संत की क्या प्रतिक्रिया रही, जिसे योगानन्द जी ने जगदीश चन्द्र बोस के सामने व्यक्त किया\
3. ऋषि तुल्य वैज्ञानिक बोस के व्यक्तित्व का वर्णन कीजिए।
4. बोस इंस्टीटयूट की कलात्मकता तथा आध्यात्मिकता को अपने शब्दों में लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. कवि गुरू रवीन्द्र नाथ टैगोर ने बोस को किन पंक्तियों से सम्बोधित किया था।
2. प्रयोगशाला उद्घाटन– अवसर पर बोस द्वारा व्यक्त विज्ञान विषयक उदात्त् विचारों को लिखिए।
3. प्रयोगशाला में फर्न के पौधे पर बोस द्वारा किये गये प्रयोग का वर्णन कीजिए।
4. टिन धातु के टुकड़े पर बोस द्वारा किये गये प्रयोग का वर्णन कीजिए।
5. पठित पाठ के आधार पर जगदीश चन्द्र बोस के व्यक्तित्व की विशेषताओं को अपने शब्दों मे लिखिए।

भोर का तारा

–जगदीश चन्द माथुर

लेखक–परिचय

जन्म 16 जुलाई 1917 खुर्जा, बुलन्दशहर (उत्तरप्रदेश) में एवं देहावसान 14 मई 1978 में हुआ।

श्री माथुर मूल रूप से नाटककार थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा खुर्जा एवं उच्च शिक्षा इलाहबाद में हुई। बिहार में शिक्षा सचिव व आकाशवाणी में महा संचालक सहित अनेक राजकीय पदों पर प्रतिष्ठित हुए।

विद्यार्थी जीवन से ही रचना कर्म में लीन हुए। माथुर जी ने वर्तमान समाज व इतिहास दोनों पर लिखा है। उनके सामाजिक नाटक आधुनिक समाज की विडम्बना पूर्ण स्थिति को उभारते हैं तो वहीं ऐतिहासिक नाटकों में अतीत के गौरव को उभारा है।

इनके एकांकी जीवन की यथार्थ संवेदनाओं को उभारने में सक्षम हैं तथा पात्र अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व और चारित्रिक विशेषताएं रखते हैं ।

इनकी प्रमुख रचनाएं हैं – भोर का तारा, कोणार्क, ओ मेरे सपने, शारदीया, दस तस्वीरें, परम्पराशील नाट्य, पहला राजा व जिन्होंने जीना जाना।

श्री माथुर छायावादी संवेदना के रचनाकार हैं इनके नाटक मंचीय लोकप्रियता को प्राप्त हुए हैं।

पाठ–परिचय

भोर का तारा एक ऐतिहासिक एकांकी है। इसका कथानक गुप्त वंश के अन्तिम प्रतापी शासक स्कन्दगुप्त के शासन से सम्बन्धित है। उज्जयिनी गुप्त–साम्राज्य की वैभवपूर्ण नगरी थी। शेखर इसी नगरी का एक प्रतिभावान व भावुक हृदय कवि है जो हृदय–सृष्टि के अनुपम सौन्दर्य में डूबा रहता है तथा इसकी पूर्ति वह नारी अर्थात अपनी प्रेयसी छाया में देखता है। सम्राट कवि की प्रतिभा से प्रभावित होकर उसे राजकवि बना देता है तथा साथ ही उसका विवाह छाया से हो जाता है। छाया से विवाह के बाद वह प्रेम सौन्दर्य में लीन हो जाता है तथा छाया के अपूर्व सौन्दर्य में डूब कर ''भोर का तारा'' नामक रचना करता है तथा यह अद्भुत रचना वह राजा को भेंट करना चाहता है किन्तु अचानक राजनैतिक स्थिति में विस्फोट होता है। हूण शासक तोरमाण तक्षशिला पर आक्रमण कर देता है। राज्य के लिए यह संकट की घड़ी थी। माधव इस समय राज–कवि शेखर से उसकी वाणी मांगता है, शेखर अपने प्रेम व सौन्दर्य के जगत को त्याग कर अपने राजधर्म के निर्वाह हेतु 'भोर का तारा' को अग्नि–भेंट करता है तथा लोक–मन में राष्ट्रप्रेम का भाव जगाने व बलिदान की प्रेरणा देने निकल जाता है।

****

पात्र

शेखर – उज्जयिनी का कवि।

माधव – गुप्त–साम्राज्य में एक राज्य–कर्मचारी (शेखर का मित्र)

छाया – शेखर की प्रेयसी, बाद में पत्नी।

(कवि शेखर का गृह। सब वस्तुएँ अस्त–व्यस्त। बायीं ओर एक तख्त पर एक मैली फटी हुई चद्दर बिछी है। उस पर एक चौकी भी रखी है और लेखनी इत्यादि भी। इधर–उधर भोज–पत्र (या कागज) बिखरे हुए पड़े हैं। एक तिपाई भी है, जिस पर कुछ पात्र रखे हुए हैं। पीछे की ओर खिड़की है। बायाँ दरवाजा अंदर जाने के लिए है, और दायाँ बाहर जाने के लिए। दीवारों में कई आले या ताक हैं, जिनमें दीपदान या कुछ और वस्तुएं रखी हैं। शेखर कुछ गुनगुनाते हुए टहलता है या कभी तख्त पर बैठ जाता है। जान पड़ता वह संलग्न है। तल्लीन मुद्रा। जो कुछ वह कहता है, उसे लिखता भी जाता है)

''अंगुलियाँ आतुर तुरत पसार''

खींचते नीले पट का छोर...(दुबारा कहता है, फिर लिखता है)

टँगा जिसमें जाने किस ओर...

स्वर्ण–कण ...स्वर्ण–कण ... (पूरा करने के प्रयास में तल्लीन है। इतने में बाहर से माधव का प्रवेश। सांसारिक अनुभव और जानकारी उसके चेहरे से प्रकट है। द्वार के पास खड़ा होकर वह थोड़ी देर तक कवि की लीला देखता रहता है। उसके बाद ...)

माधव – शेखर !

शेखर – (अभी सुना ही नहीं। एक पंक्ति लिखकर) स्वर्ण–कण प्रिय हो रहा निहार!

माधव – शेखर!

शेखर – (चौंककर) कौन? ओह माधव! (उठकर माधव की ओर बढ़ता है)

माधव – क्या कर रहे हो शेखर?

शेखर – यहाँ आओ माधव, यहाँ। (उसके कन्धों को पकड़कर तख्त पर बिठाता हुआ) यहाँ बैठो (स्वयं खड़ा है) माधव ! तुमने भोर का तारा देखा है कभी?

माधव –(मुस्कुराते हुए) हाँ क्यों?

शेखर – (बड़ी गम्भीरतापूर्वक) कैसा अकेला–सा, एकटक देखता रहता है?जानते हो? ... नहीं जानते (तख्त के दूसरे भाग पर बैठता हुआ) बात यह है कि एक बार रजनी–बाला अपने प्रियतम प्रभात से मिलने चली, गहरे नीले कपड़े पहनकर जिसमें सोने के तारे टंके थे। ज्यों ही निकट पहुँची, त्यों ही लाज की आँधी आई और बेचारी रजनी को उड़ा ले चली। (रुककर) फिर क्या हुआ?

माधव – (कुछ उद्योग के बाद) प्रभात अकेला रह गया।

शेखर – नहीं, उसने अपनी अँगुलियाँ पसार कर उसके नीले पट का छोर नीचे खींच लिया। जानते हो, यह भोर का तारा है न? उसी छोर में टँका हुआ है सोने का कण एकटक प्रियतम प्रभात को निहार रहा है

...क्यों ?

माधव – बहुत ऊँची कल्पना है। लिख चुके क्या?

शेखर – अभी तो और लिखूँगा। बैठा ही था कि इतने में तुम आ गये...।

माधव – (हँसते हुए) और तब तुम्हें ध्यान हुआ कि तुम धरती पर ही बैठे थे, आकाश में नहीं (रुककर) मुझे कोस तो नहीं रहे हो शेखर?

शेखर –(भोलेपन से) क्यों?

माधव – तुम्हारी परियों और तारों की दुनिया में मैं मनुष्यों की दुनिया लेकर आ गया।

शेखर – (सच्चेपन से) कभी–कभी तो मुझे तुममें भी कविता दिख पड़ती है।

माधव – मुझ में ...(जोर से हँसकर) तुम अठखेलियाँ करना भी जानते हो...? (गम्भीर होते हुए) शेखर, कविता तो कोमल हृदयों की चीज है। मुझ जैसे काम–काजी राजनीतिज्ञों और सैनिकों के तो छूने भर से मुरझा जायेगी। हम लोगों के लिए तो दुनिया की और ही उलझने बहुत हैं।

शेखर – माधव, तुमने कभी यह भी सोचा है कि इन उलझनों से बाहर निकलने का मार्ग हो सकता है?

माधव – और हम लोग करते ही क्या हैं?रात–दिन मनुष्यों की उलझनें सुलझाने का ही तो उद्योग करते रहते हैं।

शेखर – यही तो नहीं करते। तुम राजनीतिज्ञ और मन्त्री लोग बड़ी सादगी के साथ अमीरी, गरीबी, युद्ध और सन्धि की समस्याओं को हल करने का अभिनय करते हो, परन्तु मनुष्य को इन उलझनों के बाहर कभी नहीं लाते। कवि इसका प्रयत्न करते हैं पर तुम उन्हें पागल ...

माधव – कवि...? (अवहेलनापूर्वक) तुम उलझनों से बाहर निकलने का प्रयास नहीं करते, तुम उन्हें भूलने का प्रयास करते हो। तुम सपना देखते हो कि जीवन सौन्दर्य है। हम जानते रहते हैं और देखते हैं कि जीवन कर्त्तव्य है।

शेखर – (भावुकता से) मुझे तो सौन्दर्य ही कर्त्तव्य जान पड़ता है। मुझे तो जहाँ सौन्दर्य दिख पड़ता है, वहाँ कविता दीख पड़ती है, वहीं जीवन दिखाई पड़ता है। (स्वर बदलकर) माधव, तुमने सम्राट के भवन के पास राज–पथ के किनारे उस अन्धी भिखमंगिन को कभी देखा है?

माधव – (मुस्कुराहट रोकते हुए) हाँ!

शेखर – मैं उसे सदा भीख देता हूँ। जानते हो क्यों?

माधव – क्यों! (कुछ सोचने के बाद) दया सज्जन का भूषण है।

शेखर –दया ? हूँ। (ठहरकर) मैं तो उसे इसलिए भीख देता हूँ क्योंकि उसमें एक कविता, एक लय, एक कला झलकती है। उसका गहरा झुर्रियोंदार चेहरा, उसके काँपते हुए हाथ, उसकी आँखों के बेबस गड्ढे (एक तरफ एकटक देखते हुए, मानो इस मानसिक–चित्र में खो गया हो) उसकी झुकी हुई कमर–माधव, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है मानो किसी शिल्पी ने उसे इस ढाँचे में ढाला हो।

माधव –(इस भाषण से उसका अच्छा–खासा मनोरंजन हो गया जान पड़ता है। खड़े होकर शेखर पर शरारत–भरी आँखे गड़ाते हुए) शेखर, टाट में रेशम का पैबन्द क्यों लगाते हो? ऐसी कविता तुम्हें किसी देवी की प्रशंसा में करनी चाहिए थी।

शेखर – (सरल भाव से) किस देवी की?

माधव – (अर्थपूर्ण स्वर में) यह तो उसके पुजारी से पूछो।

शेखर – मैं तो नहीं जानता किसी पुजारी को।

माधव – अपने को आज तक किसी ने जाना है, शेखर! (हँस पड़ता है। शेखर कुछ समझकर झेंपता–सा है) पागल ! ... (गम्भीर होकर बैठते हुए) शेखर, सच बताओ, तुम छाया को प्यार करते हो?

शेखर – (मन्द, गहरे स्वर में) कितनी बार पूछोगे?

माधव – बहुत प्यार करते हो?

शेखर – माधव! जीवन में मेरी दो साधनाएं है ...(तख्त से उठकर खिड़की की ओर बढ़ता हुआ) छाया का प्यार और कविता। (खिड़की के सहारे दर्शकों की ओर मुँह करके खड़ा हो जाता है)

माधव – और छाया?

शेखर – हम दोनों नदी के किनारे हैं, जो एक दूसरे की ओर मुड़ते हैं, पर मिल नहीं सकते।

माधव – (उठकर शेखर के कन्धों पर हाथ रखते हुए) सुनो शेखर, नदी सूख भी तो सकती है।

शेखर –नहीं माधव, उसके भाई देवदत्त से किसी तरह की आशा करना व्यर्थ है। मेरे लिए तो उनका हृदय सूखा हुआ है।

माधव – क्यों?

शेखर – तुम पूछते हो क्यों? तुम भी तो सम्राट स्कन्दगुप्त के दरबारी हो। देवदत्त एक मन्त्री है। भला, एक मन्त्री की बहन का एक मामूली कवि से क्या सम्बन्ध है?

माधव –मामूली कवि! शेखर, तुम अपने को मामूली कवि समझते हो?

शेखर – और क्या समझूं?राज–कवि?

माधव – सुनो शेखर, तुम्हें एक खबर सुनाता हूँ।

शेखर – खबर?

माधव – हाँ, मैं कल रात को राज–भवन गया था।

शेखर – इसमें तो कोई नई बात नहीं। तुम्हारा तो काम ही यह है।

माधव – नहीं कल एक उत्सव था। स्वयं सम्राट ने कुछ लोगों को बुलाया था। गाने हुए, नाच हुए, दावत हुई। एक युवती ने बहुत सुन्दर गीत सुनाया। सम्राट तो उस गीत पर रीझ गये।

शेखर – (उकताकर) आखिर तुम यह सब मुझे क्यों सुना रहे हो, माधव?

माधव – इसलिए कि सम्राट ने उस गीत बनाने वाले का नाम पूछा! पता चला कि उसका नाम था

शेखर।

शेखर –(चौंककर) क्या?

माधव – अभी और तो सुनो। उस युवती ने सम्राट से कहा कि अगर आपको यह पसन्द है, तो इसके लिखने वाले कवि को अपने दरबार में बुलाइये। अब कल से वह कवि महाराजाधिराज सम्राट स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य के दरबार में जायेगा।

शेखर – मैं?

माधव – (अभिनय–सा करते हुए, झुककर) श्रीमान् क्या आप ही का नाम शेखर है?

शेखर – मैं जाऊंगा सम्राट के दरबार में?माधव सपना तो नहीं देख रहे हो?

माधव –सपने तो तुम देखा करते हो? लेकिन अभी मेरा समाचार पूरा कहाँ हुआ है?

शेखर –हाँ, वह युवती कौन है?

माधव – अब यह बताना होगा? तुम भी बुद्धू हो! क्या इसी बूते पर प्रेम करने चले थे।

शेखर – ओह! छाया... (माधव का हाथ पकड़ते हुए) तुम कितने अच्छे हो!

माधव – और सुनो ...सम्राट ने देवदत्त को आज्ञा दी है कि वह तक्षशिला जाकर वहाँ के क्षत्रप वीरभद्र को दबाए। आज देवदत्त के साथ मैं भी जाऊँगा, उनका मन्त्री बनकर। समझे?

शेखर – (स्वप्न–से में) तो क्या सच ही छाया ने कहा?सच ही?

माधव – शेखर, आठ दिन बाद आर्य देवदत्त और मैं तक्षशिला चल देंगे। ...उसके बाद, उसके... बाद छाया कहाँ रहेगी भला बताओ तो?

शेखर – माधव! (माधव हँस पड़ता) इतना भाग्य?इतना...विश्वास नहीं होता।

माधव – न करो विश्वास! लेकिन भले मानस, छाया क्या इस कूड़े में रहेगी। बिखरे हुए कागज, टूटी चटाई, फटे हुए वस्त्र। शेखर, लापरवाही की सीमा होती है।

शेखर –मैं कोई इन बातों की परवाह करता हूँ ।

माधव – और फिर?

शेखर – मैं परवाह करता हूँ, फूल की पंखुडियों पर जगमगाती हुई ओस की, (भावोद्रेक से) संध्या में सूर्य की किरणों को अपनी गोद में समेटने वाले बादलों के टुकड़ों, सुबह को आकाश के कोने में टिमटिमाने वाले तारे की।

माधव – एक चीज रह गई।

शेखर – क्या?

माधव – जिसे तुम वृक्षों के नीचे दिन में फैली देखते हो। (उठकर दूर खड़ा हो जाता है)

शेखर –वृक्षों के नीचे?

माधव –जिसे तुम दर्पण में झलकती देखते हो।

शेखर – दर्पण में?

माधव – जिसे तुम अपने ह्रदय में हमेशा देखते हो। (निकट आ गया है)

शेखर –(समझकर बच्चों की तरह) छाया!

माधव – (मुस्कुराते हुए) छाया।

(परदा गिरता है)

(२)

(उज्जयिनी में आर्य देवदत्त का भवन जिसमें अब शेखर और छाया रहते हैं। कमरा सजा हुआ और साफ है। दीवारों पर कुछ चित्र खिंचे हुए है। कोने में धूपदान भी है। सामने तख्त पर चटाई और लिखने पढने का सामान है। बराबर में एक छोटी चौकी पर कुछ ग्रंथ रक्खे हुए हैं। दूसरी ओर एक पीढ़ा है, जिसके निकट मिट्टी की, किन्तु कलापूर्ण एक अँगीठी रक्खी हुई है, दीवार के भाग पर एक अलगनी है, जिस पर कुछ धोतियाँ इत्यादि टँगी है।

छाया सौन्दर्य की प्रतिमा, चांचल्य उन्माद और गाम्भीर्य का जिसमें स्त्री–सुलभ सम्मिश्रण है, गृहस्वामिनी होने के नाते कमरे की सब वस्तुएँ ठीक–ठाक स्थान पर संभालकर रख रही है। साथ ही कुछ गुनगुनाती भी जाती है। जाड़ा होने के कारण तापने के लिए उसने अँगीठी में अग्नि प्रज्वलित कर दी। उसकी पीठ द्वार की ओर है। अपने कार्य और गान में इतनी संलग्न है कि बाहर पैरों की आवाज नहीं सुनाई देती।)

गीत

प्यार की है क्या पहचान ?

चाँदनी का पाकर नव–स्पर्श, चमक उठते पत्ते नादान
पवन की परम सलिल की लहर, नृत्य में हो जाती लयमान
सूर्य का सुन कोमल पदचाप, फूल उठता चिडियों का गान
तुम्हारी तो प्रिय केवल याद, जगाती मेरे सोये प्राण

प्यार की है क्या पहचान?

(धीरे से शेखर का प्रवेश। कन्धे और कमर पर ऊनी दुशाला है, बगल में ग्रंथ। गले में फूलों की माला है। द्वार पर चुपचाप खड़ा होकर मुस्कुराते हुए छाया का गीत सुनता है।)

शेखर – (थोड़ी देर बाद, धीरे से) छाया! (छाया नहीं सुन पाती है। गाना जारी है। फिर कुछ समय बाद) छाया!

छाया –(चौंककर खड़ी हो जाती है। मुख फेरकर) ओह!

शेखर – (तख्त की ओर बढ़ता हुआ) छाया तुम्हें एक कहानी मालूम है?

छाया – (उत्सुकतापूर्वक) कौन–सी!

शेखर – (छोटी चौकी पर पहले तो अपनी बगल का ग्रंथ रखता है, और फिर उस पर दुशाला रखते हुए) एक बहुत सुन्दर–सी।

छाया – सुने कैसी कहानी है?

शेखर – (बैठकर) एक राजा के यहाँ एक कवि रहता था, युवक और भावुक। राज–भवन में सब लोग उसे प्यार करते थे। राजा तो उस पर निछावर था। रोज सुबह राजा उसके मुँह से नई कविता सुनता था, नई और सुन्दर कविता।

छाया – हूँ (पीढ़े पर बैठ जाती है, चिबुक को हथेली पर टेकती है)

शेखर – परन्तु उसमें एक बुराई थी।

छाया – क्या?

शेखर – कवि अपनी कविता केवल सुबह के समय सुनाता था। यदि राजा उससे पूछता कि तुम दोपहर या सन्ध्या को अपनी कविता क्यों नहीं सुनाते, तो वह उत्तर देता – 'मैं केवल रात के तीसरे पहर में कविता लिख सकता हूँ।

छाया – राजा उससे रूष्ट नहीं हुआ?

शेखर – नहीं। उसने सोचा कि कवि के घर चलकर देखा जाय कि इसमें रहस्य क्या है?रात का तीसरा पहर होते ही राजा वेश बदलकर कवि के घर के पास खिड़की के नीचे बैठ गया।

छाया – उसके बाद?

शेखर – उसके बाद राजा ने देखा कि कवि लेखनी लेकर तैयार बैठ गया। थोड़ी देर में कहीं से बहुत मधुर सुरीला स्वर राजा के कान में पड़ा। राजा झूमने लगा और कवि की लेखनी आप–से–आप चलने लगी।

छाया –फिर?

शेखर – फिर क्या?राजा महल को लौट आया और उसके बाद उसने कवि से कभी यह प्रश्न नहीं पूछा कि वह सुबह ही क्यों कविता सुनाता था। भला, बताओ तो क्यों नहीं पूछा?

छाया – बताऊँ?

शेखर – हाँ!

छाया – राजा को यह मालूम हो गया था कि उस गायिका के स्वर में ही कवि की कविता थी। और बताऊँ! (खड़ी हो जाती है)

शेखर –(मुस्कुराता हुआ) छाया तुम ...

छाया – (टोककर, शीघ्रता और चंचलता के साथ) वह गायिका और कोई नहीं, उस कवि की पत्नी थी। और बताऊँ, उस कवि को कहानी सुनाने का बहुत शौक था–झूठी कहानी। और बताऊँ, उस

कवि के बाल लम्बे थे, कपड़े ढीले–ढाले, गले में उसके फूलों की माला थी, माथे पर – (इस बीच में शेखर की मुस्कुराहट हल्की हँसी में परिणत हो गई है, यहाँ तक कि इन शब्दों तक पहुँचते पहुँचते दोनों जोर से हँस पड़ते हैं)

शेखर – (थोड़ी देर बाद गम्भीर होते हुए) लेकिन छाया, तुम्हीं बताओ–तुम्हारे गान, तुम्हारी प्रेरणा, तुम्हारे प्रेम के बिना मेरी कविता क्या होती?तुम तो मेरी कविता हो।

छाया – (बड़े गम्भीर, उलहना–भरे स्वर में) प्रत्येक पुरूष के लिए स्त्री एक कविता है।

शेखर – क्या मतलब तुम्हारा?

छाया – कविता तुम्हारे सूने दिलों में संगीत भरती है। स्त्री भी तुम्हारे ऊबे हुए मन को बहलाती है। जब पुरूष जीवन की सूखी चट्टानों पर चढ़ता–चढ़ता थक जाता है, तब सोचता है–'चलो, थोड़ा मन बहलाव ही करें।' स्त्री पर अपना सारा प्यार, अपने सारे अरमान निछावर कर देता है, मानों दुनिया में और कुछ हो ही नहीं। और उसके बाद जब चाँदनी बीत जाती है, जब कविता नीरव हो जाती है, तब पुरूष को चट्टानें फिर बुलाती हैं, और वह ऐसे भागता है मानों पिंजरे से छूटा हुआ पंछी। और स्त्री? स्त्री के लिए वही अँधेरा, फिर वही सूनापन।

शेखर – (मन्द स्वर में) छाया, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो।

छाया – क्या एक दिन तुम मुझे भी ऐसे छोड़कर न चले जाओगे?

शेखर – लेकिन छाया, मैं तुम्हें छोड़कर कहाँ जा सकता हूँ।

छाया – उँहूँ, मैं नहीं मान सकती।

शेखर – सुनो तो, मेरे लिए तो जीवन में ऐसी सूखी चट्टानें थोड़े ही हैं। मेरी कविता ही मेरी हरी–भरी वाटिका है। मैं उसे प्यार करता हूँ। क्योंकि मुझे तुम्हारे हृदय में सौन्दर्य दीखता है। जिस दिन मैं तुमसे दूर हो जाऊँगा। उस दिन मैं सौन्दर्य से दूर हो जाऊँगा, अपनी कविता से दूर हो जाऊँगा। (कुछ रुककर) मेरी कविता मर जायेगी।

छाया – नहीं शेखर, मैं मर जाऊँगी, किन्तु तुम्हारी कविता रहेगी, बहुत दिन रहेगी।

शेखर – मेरी कविता! (कुछ देर बाद) छाया, आज मैं तुम्हें एक बड़ी विशेष बात बताने वाला हूँ, एक ऐसा भेद जो अब तक मैंने तुमसे भी छिपा रक्खा था।

छाया –रहने दो, तुम ऐसा भेद और ऐसी कहानियाँ सुनाया ही करते हो।

शेखर – नहीं। ... अच्छा तनिक उस दुशाले को उठाओ। (छाया उठाती है) उसके नीचे कुछ है। (छाया उस ग्रंथ को हाथ में लेती है) उसे खोलो। ... क्या है?

छाया – (आश्चर्यचकित होकर) ओह? (छाया उलटती जाती है, शेखर की प्रसन्नता बढ़ती जाती है) 'भोर का तारा' उफ्फोह! यह तुमने कब लिखा?मुझसे छिप कर?

शेखर – (हँसते हुए–विजय का–सा भाव) छाया, तुम्हें याद है उस दिन की, जब माधव के साथ मैं तुम्हारे भाई देवदत्त से मिलने इसी भवन में आया था?

छाया – (शेखर की ओर थोड़ी देर देखकर) उस दिन को कैसे भूल सकती हूँ, शेखर! उसी दिन तो भैया को तक्षशिला जाने की आज्ञा मिली थी, उसी दिन तो हम और तुम...(रुक जाती है)

शेखर – हाँ छाया, उसी दिन मैंने इस महाकाव्य को लिखना प्रारम्भ किया था। (गहरे स्वर में) आज वह समाप्त हो गया।

छाया – शेखर, यह हमारे प्रेम की अमर स्मृति है।

शेखर –उसे यहाँ लाओ। (हाथ में लेकर, चाव से खोलता हुआ) 'भोर का तारा'। छाया, यह काव्य बड़ी लगन का फल है। कल मैं इसे सम्राट की सेवा में ले जाऊंगा। और फिर जब मैं उस सभा में इसे सुनाना आरम्भ करूँगा, उस समय सम्राट गद्‌गद् हो जायेंगे, और मैं कवियों का सिरमौर हो जाऊँगा। छाया, बरसों बाद दुनिया पढ़ेगी, कविकुलशिरोमणि शेखर कृत 'भोर का तारा' – हा हा हा! (विभोर)

(छाया उसकी ओर एकटक देख रही है। सहसा उसके चेहरे पर चिन्ता की रेखा खिंच जाती है। शेखर हँस रहा है।)

छाया – शेखर ! (वह हँसे जा रहा है)शेखर! (हँसे जा रहा है) शेखर! (शेखर की दृष्टि उस पर पड़ती है)

शेखर – (सहसा चुप होकर) क्यों, छाया, क्या हुआ तुमको?

छाया – (चिन्तित स्वर में) शेखर ! (चुप हो जाती है)

शेखर – कहो।

छाया – शेखर! तुम इसे सम्भालकर रखोगे न?

शेखर – बस, इतनी–सी ही बात?

छाया –शेखर, मुझे डर लगता है कि... कि...कहीं यह नष्ट न हो जाय, कोई इस चुरा न ले जाय, और फिर तुम...

शेखर – हा हा हा ! पगली, ऐसा क्यों होने लगा? सोचने से ही डर गई! छाया, तुम्हारे लिए तो आज प्रसन्न होने का दिन है, बहुत प्रसन्न ! इधर देखो छाया, हम लोग कितने सुखी हैं?और तुम?जानती हो, तुम कौन हो?तुम हो तक्षशिला के क्षत्रप देवदत्त की बहन और उज्जयिनी के सबसे बड़े कवि शेखर की पत्नी!...तक्षशिला का क्षत्रप और उज्जयिनी का कवि। हँ...हँ...हँ...! क्यों छाया?

छाया –(मन्द स्वर में) तुम सच कहते हो, शेखर! हम लोग बहुत सुखी हैं।

शेखर –(मग्नावस्था में) बहुत सुखी!

(सहसा बाहर कोलाहल। घोड़े की टापों की आवाज। शेखर और छाया छिटककर चैतन्य खड़े हो जाते हैं। शेखर द्वार की ओर बढ़ता है।)

शेखर – कौन है?

(सहसा माधव का प्रवेश। थकित और श्रमित शस्त्रों से सुसज्जित पसीने से नहा रहा है। चेहरे पर भय और चिन्ता के चिह्न हैं।)

शेखर और छाया—माधव!

शेखर — माधव, तुम यहाँ कहाँ?

माधव — (दोनों पर दृष्टि फेंकता हुआ) शेखर, छाया (फिर उस कमरे पर डरती—सी आँखें डालता है मानो उस सुरम्य घौंसले को नष्ट करने से भय खाता हो। कुछ देर बाद बड़े प्रयत्न और कष्ट के साथ बोलता है) मैं तुम दोनों से भीख माँगने आया हूँ।

(छाया और शेखर के आश्चर्य का ठिकाना नहीं है)

छाया — भीख माँगने?तक्षशिला से...?

माधव — (धीरे—धीरे मजबूती के साथ बोलना प्रारम्भ करता है, परन्तु ज्यों—ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों—त्यों स्वर में भावुकता आती जाती है) हाँ, मैं तक्षशिला से ही आ रहा हूँ। यहाँ तक कैसे आ पाया, यह मैं नहीं जानता। यात्रा के दिन कैसे बीते, यह भी नहीं जानता। यह जानता हूँ कि आज गुप्त—साम्राज्य संकट में है और हमें घर—घर भीख माँगनी पड़ेगी।

शेखर — गुप्त साम्राज्य संकट में है! यह क्या कह रहे हो माधव?

माधव — (संजीदगी के साथ) शेखर, पश्चिमोत्तर सीमा पर आग लग चुकी है। हूणों का सरदार तोरमाण भारतवर्ष पर बढ़ आया है।

छाया — (भयाक्रांत होकर) तोरमाण?

माधव — उसने सिन्धु नदी को पार कर लिया है, उसने अम्भी—राज्य को नष्ट कर दिया है, उसकी सेना तक्षशिला को पैरों तले रौंद रही है।

छाया — (सहसा माधव के निकट जाकर, भय से कातर हो उनकी भुजा पकड़ती हुई) तक्षशिला?

माधव — (उसी स्वर में) सारा पंचनद आज उसके भय से काँप रहा है। एक के बाद एक गाँव जल रहे हैं। हत्याएँ हो रही हैं। अत्याचार हो रहा है। शीघ्र सारा ही आर्यावर्त पीड़ितों के हाहाकार से गूँजने लगेगा। शेखर, छाया, मैं तुमसे माँगता हूँ, नई भीख माँगता हूँ—सम्राट स्कन्दगुप्त की, साम्राज्य की, देश की इस संकट में मदद करो। (बाहर भारी कोलाहल। शेखर और छाया जड़वत् खड़े हैं।) देखो, बाहर जनता उमड़ रही है। शेखर, तुम्हारी वाणी में ओज है, तुम्हारे स्वर में प्रभाव। तुम अपने शब्दों के बल पर सोई आत्माओं को जगा सकते हो, युवकों में जान फूँक सकते हो। (शेखर सुने जा रहा है। चेहरे पर भावों का आवेग। मस्तक पर हाथ रखता है।) आज साम्राज्य को सैनिकों की आवश्यकता है। शेखर, अपनी ओजमयी कविता के द्वारा तुम गाँव—गाँव जाकर वह आग फैला दो, जिससे हजारों और लाखों भुजाएँ अपने सम्राट और अपने देश की रक्षा के लिए शस्त्र हाथ में लें। (कुछ रूककर शेखर के चेहरे की ओर देखता है। उसकी मुद्रा बदल रही है—जैसे कोई भीषण उद्योग कर रहा हो।) कवि, देश तुमसे यह बलिदान माँगता है।

छाया — (अत्यन्त दर्द—भरे करूण स्वर में) माधव! माधव!

माधव — (मुड़कर छाया की ओर कुछ देर देखता है। फिर थोड़ी देर बाद) छाया, उन्होंने कहा था—'मेरे प्राण क्या चीज हैं, इसमें तो सहस्रों मिट गये और सहस्रों को मिटाना है।'

शेखर – (मानों नींद से जगा हो) किसने?

माधव – आर्य देवदत्त ने, अन्तिम समय!

छाया – (जैसे बिजली गिरी हो) माधव, माधव, तो क्या भैया...

माधव – उन्होंने वीर गति पाई है, छाया! (छाया पृथ्वी पर घुटनों के बल गिर जाती है। चेहरे को हाथ से ढँक लिया है। इस बीच में माधव कहे जाता है, शेखर एक–दो बार घूमता है। उसके मुख से प्रकट होता है मानो डूबते को सहारा मिलने वाला है।) तक्षशिला से चालीस मील दूर विद्रोही वीरभद्र की खोज में वह हूणों के दल के निकट जा पहुँचे। वहाँ उन्हें ज्ञात हुआ कि वीरभद्र हूणों से मिल गया है। उनके बीस सैनिक आगे हूणों में फँसे हुए थे। वे तक्षशिला लौट सकते थे और अपने प्राण बचा सकते थे। परन्तु एक सच्चे सेनापति की भाँति उन्होंने अपने सैनिकों के लिए अपने प्राण संकट में डाल दिये और मुझे तक्षशिला और पाटलिपुत्र को चेतावनी देने के लिए भेजा। मैं आज ...

(सहसा रूक जाता है, क्योंकि उसकी दृष्टि शेखर पर जा पड़ती है। शेखर चौकी के पास खड़ा है। बाहर कोलाहल कम है। शेखर अपना हाथ उठाकर अपने ग्रंथ 'भोर का तारा' को उठाता है। इसी समय माधव की दृष्टि उस पर पड़ती है। शेखर पुस्तक को कुछ देर चाव से, बिछुड़न के प्रेम से देखता है। उसके बाद आगे बढकर अँगीठी के निकट जाकर उसमें जलती हुई अग्नि को देखता है और धीरे–धीरे उस पुस्तक को फाड़ता है। इस आवाज को सुनकर छाया अपना मुख ऊपर को करती है।)

छाया – (उसे फाड़ते हुए देखकर) शेखर!

(लेकिन शेखर ने उसे अग्निमें डाल दिया। लपटें उठती हैं। छाया फिर गिर पड़ती है। शेखर लपटों की तरफ देखता है। फिर छाया की ओर दृष्टि करता है, एक सूखी हँसी के बाद बाहर चल देता है। कोलाहल कम होने के कारण उसके पैर की आवाज थोड़ी देर तक सुनाई देती है। माधव द्वार की ओर बढ़ता है।)

छाया – (अत्यन्त पीड़ित स्वर में) माधव, तुमने तो मेरा प्रभात नष्ट कर दिया। (माधव उसके ये शब्द सुनकर बाहर जाता–जाता रूक जाता है। मुड़कर छाया की ओर देखता है। और फिर पीछे की खिड़की के निकट जाकर उसे खोल देता है। इससे बाहर का कोलाहल स्पष्ट सुनाई देता है। शेखर और उसके साथ पूरे जनसमूह के गाने का स्वर सुन पड़ता है–)

नकार पे डंका बजा है, तू शस्त्रों को अपने संभाल।
बुलाती है वीरों को तुरही, तू उठ कोई रास्ता निकाल।।

(शेखर का स्वर तीव्र है। माधव खिड़की को बन्द कर देता है। पुनः शान्ति। इसके बाद मन्द परन्तु दृढ़ स्वर में बोलता है)

माधव – छाया, मैंने तुम्हारा प्रभात नष्ट नहीं किया। प्रभात तो अब होगा। शेखर तो अब तक 'भोर का तारा' था अब यह प्रभात का सूर्य होगा।

(छाया धीरे–धीरे अपना मस्तक उठाती है।)

(पर्दा गिरता है)

शब्दार्थ

रजनी	–	रात	संजीदगी	–	समझदारी
अवहेलना	–	तिरस्कार, अनदेखी	शिल्पी	–	कलाकार
पैबन्द	–	जोड़, चकती	{त्रप	–	प्रान्ताधिपति
अलगनी	–	कपड़े टाँगने की रस्सी	सलिल	–	जल
नीरव	–	शान्त	चिबुक	–	ठुड्डी
सुरम्य	–	सुन्दर	आर्यावर्त	–	भारत
नकार	–	नगाड़ा			

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. दया सज्जनता का –

   (अ) भूषण है (ब) मूल्य है

   (स) उपहार है (द) रूप है ( )

2. छाया के अनुसार प्रत्येक पुरूष के लिए स्त्री है –

   (अ) पत्नी (ब) कविता

   (स) माता (द) देवी ( )

3. गुप्त साम्राज्य में कौनसा संकट उपस्थित हुआ –

   (अ) अकाल का (ब) बाढ़ का

   (स) तोरमाण के आक्रमण का (द) गृहयुद्ध का ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. एकांकी में वर्णित गुप्त साम्राज्य का शासक कौन था?
2. देवदत्त कौन था?
3. माधव ने शेखर को तक्षशिला से आकर क्या सूचना दी?
4. तोरमाण कौन था?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. शेखर ने अपने जीवन की कौनसी दो साधनाएं बताईं?
2. शेखर को राजकवि क्यों बनाया गया?
3. शेखर छाया को कौनसा भेद बताता है?
4. ''देश तुमसे यह बलिदान मांगता है'' का आशय स्पष्ट कीजिए?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रस्तुत एकांकी के किस पात्र ने आपको सर्वाधिक प्रभावित किया?सकारण लिखो।
2. वास्तव में शेखर ने कवि–कर्म का निर्वाह किया, आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं?तर्क सहित स्पष्ट कीजिए?
3. भोर का तारा एकांकी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए?

गेहूँ बनाम गुलाब

—रामवृक्ष बेनीपुरी

लेखक परिचय—

जन्म बिहार के बेनीपुर गाँव में सन् 1900 में हुआ। भारतीय स्वाधीनता संग्राम आन्दोलन के सक्रिय सेनानी रहे। अनेक बार कारावास गए। एक दर्जन से भी अधिक पत्रों का सम्पादन किया जिनमें—तरूण—भारत, किसान—मित्र, गोलमाल, बालक, युवक, लोक—संग्रह, कर्मवीर, योगी, जनता व हिमालय प्रमुख हैं।

प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार के रूप में बेनीपुरी जी गद्य के क्षेत्र में विशेष लोकप्रिय हुए हैं। इन्होनें कहानी, उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, यात्रा—वृत्त, आलोचना एवं टीका तथा ललित निबन्ध के रूप में अनेक पुस्तकों की रचनाएं कीं हैं।

बेनीपुरी जी की अस्सी से अधिक बालोपयोगी, किशोरोपयोगी, राजनैतिक एवं साहित्यिक विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित हुईं हैं।

बिहारी सतसई, विद्यापति पदावली, महाकवि इकबाल, जोश के कलाम, लाल चीन, लाल रूस, जयप्रकाश, रोजालुंजेम, पतितों के देश में, चिन्ता के फूल, माटी की मूरतें, अम्बापति, गेंहू और गुलाब, परियों के पंख बांधकर, जंजीरें और दीवारें, लाल तारा, झोंपड़ी का रूदन, दीदी, सात दिन व आंसू की तस्वीरें प्रमुख हैं।

एक विशिष्ट प्रकार की अलंकृत भाषा तथा भावुकता प्रधान शैली के कारण बेनीपुरी जी की हिन्दी गद्य में विशिष्ट पहचान है।

पाठ—परिचय

प्रस्तुत निबन्ध भावात्मक एवं सांस्कृतिक है जिसमें भौतिकता पर मानसिक आनन्द की विजय की ओर प्रेरित किया गया है। गेहूँ भौतिकता का प्रतीक है और गुलाब मानसिक तृप्ति का। गेहूँ स्थूल जगत का प्रतीक है, गुलाब सूक्ष्म का। भौतिक आवश्यकताओं को महत्व देने के चक्कर में मानव अपनी शान्ति खो रहा है। वास्तव में गेहूँ और गुलाब में संतुलन आवश्यक है जो जीवन को पूर्णता दे सकता है।

****

गेहूँ हम खाते हैं, गुलाब सूँघते हैं। एक से शरीर की पुष्टि होती है, दूसरे से मानस तृप्त होता है।

गेहूँ बड़ा या गुलाब?हम क्या चाहते हैं — पुष्ट शरीर या तृप्त मानस? या पुष्ट शरीर पर तृप्त मानस?

जब मानव पृथ्वी पर आया, भूख लेकर। क्षुधा, क्षुधा, पिपासा, पिपासा। क्या खाए, क्या पीएं? माँ के स्तनों को निचोड़ा, वृक्षों को झकझोरा, कीट—पतंग, पशु—पक्षी — कुछ न छूट पाए उससे !

गेहूँ – उसकी भूख का काफिला आज गेहूँ पर टूट पड़ा है । गेहूँ उपजाओ, गेहूँ उपजाओ, गेहूँ उपजाओ !

मैदान जोते जा रहे हैं, बाग उजाड़े जा रहे हैं – गेहूँ के लिए।

बेचारा गुलाब – भरी जवानी में सिसकियाँ ले रहा है। शरीर की आवश्यकता ने मानसिक वृत्तियों को कहीं कोने में डाल रक्खा है, दबा रक्खा है।

किंतु, चाहे कच्चा चरे या पकाकर खाए – गेहूँ तक पशु और मानव में क्या अंतर?मानव को मानव बनाया गुलाब ने! मानव मानव तब बना जब उसने शरीर की आवश्यकताओं पर मानसिक वृत्तियों को तरजीह दी।

यही नहीं, जब उसकी भूख खाँव–खाँव कर रही थी तब भी उसकी आँखें गुलाब पर टँगी थीं।

उसका प्रथम संगीत निकला, जब उसकी कामिनियाँ गेहूँ को ऊखल और चक्की में पीस–कूट रही थीं। पशुओं को मारकर, खाकर ही वह तृप्त नहीं हुआ, उनकी खाल का बनाया ढोल और उनकी सींग की बनाई तुरही। मछली मारने के लिए जब वह अपनी नाव में पतवार का पंख लगाकर जल पर उड़ा जा रहा था, तब उसके छप–छप में उसने ताल पाया, तराने छोड़े ! बाँस से उसने लाठी ही नहीं बनाई, वंशी भी बनाई।

रात का काला–घुप्प परदा दूर हुआ, तब यह उच्छवसित हुआ सिर्फ इसलिए नहीं कि अब पेट–पूजा की समिधा जुटाने में उसे सहूलियत मिलेगी, बल्कि वह आनंद–विभोर हुआ, उषा की लालिमा से, उगते सूरज की शनैः–शनैः प्रस्फुटित होनेवाली सुनहली किरणों से, पृथ्वी पर चम–चम करते लक्ष–लक्ष ओसकणों से! आसमान में जब बादल उमड़े तब उनमें अपनी कृषि का आरोप करके ही वह प्रसन्न नहीं हुआ। उनके सौन्दर्य–बोध ने उसके मन–मोर को नाच उठने के लिए लाचार किया, इन्द्रधनुष ने उसके हृदय को भी इन्द्रधनुषी रँग में रँग दिया!

मानव–शरीर में पेट का स्थान नीचे है, हृदय का ऊपर और मस्तिष्क का सबसे ऊपर। पशुओं की तरह उसका पेट और मानस समानांतर रेखा में नहीं है। जिस दिन वह सीधे तनकर खड़ा हुआ, मानस ने उसके पेट पर विजय की घोषणा की।

गेहूँ की आवश्यकता उसे है, किंतु उसकी चेष्टा रही है गेहूँ पर विजय प्राप्त करने की। उपवास, व्रत, तपस्या आदि उसी चेष्टा के भिन्न–भिन्न रूप रहे हैं।

जब तक मानव के जीवन में गेहूँ और गुलाब का सन्तुलन रहा वह सुखी रहा, सानन्द रहा !

वह कमाता हुआ गाता था और गाता हुआ कमाता था। उसके श्रम के साथ संगीत बँधा हुआ था और संगीत के साथ श्रम।

उसका साँवला दिन में गायें चराता था, रात में रास रचाता था।

पृथ्वी पर चलता हुआ वह आकाश को नहीं भूला था और जब आकाश पर उसकी नजरें गड़ी थीं, उसे याद था कि उसके पैर मिट्टी पर हैं।

किंतु धीरे–धीरे यह सन्तुलन टूटा।

अब गेहूँ प्रतीक बन गया हड्डी तोडने वाले, उबाने वाले, थकाने वाले, नारकीय यंत्रणाएँ देने वाले श्रम का – वह श्रम, जो पेट की क्षुधा भी अच्छी तरह शांत न कर सके।

और गुलाब बन गया प्रतीक विलासिता का – भ्रष्टाचार का, गंदगी और गलीज का। वह विलासिता – जो शरीर को नष्ट करती है और मानस को भी !

अब उसके साँवले ने हाथ में शंख और चक्र लिए। नतीजा – महाभारत और यदुवंशियों का सर्वनाश !

यह परंपरा चली आ रही है। आज चारों ओर महाभारत है, गृहयुद्ध है, सर्वनाश है, महानाश है!

गेहूँ सिर धुन रहा है खेतों में, गुलाब रो रहा है बगीचों में – दोनों अपने–अपने पालन–कर्ताओं के भाग्य पर, दुर्भाग्य पर ..... !

चलो, पीछे मुड़ो। गेहूँ और गुलाब में हम एक बार फिर सन्तुलन स्थापित करें।

किंतु मानव क्या पीछे मुड़ा है?मुड़ सकता है?

यह महायात्री चलता रहा है, चलता रहेगा !

और क्या नवीन सन्तुलन चिरस्थायी हो सकेगा?क्या इतिहास फिर दुहराकर नहीं रहेगा?

नहीं, मानव को पीछे मोड़ने की चेष्टा न करो।

अब गुलाब और गेहूँ में फिर सन्तुलन लाने की चेष्टा में सिर खपाने की आवश्यकता नहीं।

अब गुलाब गेहूँ पर विजय प्राप्त करे ! गेहूँ पर गुलाब की विजय – चिर विजय! अब नए मानव की यह नई आकांक्षा हो!

क्या यह संभव है?

बिलकुल सोलह आने संभव है !

विज्ञान ने बता दिया है – यह गेहूँ क्या है। और उसने यह भी जता दिया है कि मानव में यह चिर–बुभुक्षा क्यों है।

गेहूँ का गेहूँत्व क्या है, हम जान गए हैं। यह गेहूँत्व उसमें आता कहाँ से है, हमसे यह भी छिपा नहीं है ।

पृथ्वी और आकाश के कुछ तत्व एक विशेष प्रतिक्रिया के पौधों की बालियों में संगृहीत होकर गेहूँ बन जाते हैं। उन्हीं तत्वों की कमी हमारे शरीर में भूख नाम पाती है !

क्यों पृथ्वी की कुड़ाई, जुताई, गुड़ाई! हम पृथ्वी और आकाश के नीचे इन तत्वों को क्यों न ग्रहण करें?

हाँ, यह तो अनहोनी बात, युटोपिया, युटोपिया! तब तक बनी रहेगी, जब तक मानव संहार–काण्ड के लिए ही आकाश–पाताल एक करता रहेगा। ज्यों ही उसने जीवन की समस्याओं पर ध्यान दिया, यह बात हस्तामलकवत् सिद्ध होकर रहेगी !

और, विज्ञान को इस ओर आना है, नहीं तो मानव का क्या, सर्व ब्रह्माण्ड का संहार निश्चित है !

विज्ञान धीरे–धीरे इस ओर भी कदम बढ़ा रहा है !

कम से कम इतना तो अवश्य ही कर देगा कि गेहूँ इतना पैदा हो कि जीवन की परमावश्यक वस्तुएँ हवा, पानी की तरह इफरात हो जायँ। बीज, खाद, सिंचाई, जुताई के ऐसे तरीके और किस्म आदि तो निकलते ही जा रहे हैं जो गेहूँ की समस्या को हल कर दें !

प्रचुरता – शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले साधनों की प्रचुरता की ओर आज का मानव प्रभावित हो रहा है !

प्रचुरता? – एक प्रश्न चिह्न!

क्या प्रचुरता मानव को सुख और शांति दे सकती है?

'हमारा सोने का हिंदोस्तान' – यह गीत गाइए, किंतु यह न भूलिए कि यहाँ एक सोने की नगरी थी, जिसमें राक्षसता निवास करती थी! जिसे दूसरे की बहू–बेटियों को उड़ा ले जाने में तनिक भी झिझक नहीं थी।

राक्षसता – जो रक्त पीती थी, जो अभक्ष्य खाती थी, जिसके अकाय शरीर था, दस शिर थे, जो छह महीने सोती थी !

गेहूँ बड़ा प्रबल है – वह बहुत दिनों तक हमें शरीर का गुलाम बनाकर रखना चाहेगा! पेट की क्षुधा शांत कीजिए, तो वह वासनाओं की क्षुधा जाग्रत कर बहुत दिनों तक आपको तबाह करना चाहेगा।

तो, प्रचुरता में भी राक्षसता न आवे, इसके लिए क्या उपाय?

अपनी वृत्तियों को वश में करने के लिए आज का मनोविज्ञान दो उपाय बताता है – इंद्रियों के संयमन का और वृत्तियों को उर्ध्वगामी करने का।

संयमन का उपदेश हमारे ऋषि–मुनि देते आए हैं। किंतु, इसके बूरे नतीजे भी हमारे सामने हैं – बड़े–बड़े तपस्वियों की लंबी–लंबी तपस्याएँ एक रम्भा, एक मेनका, एक उर्वशी की मुस्कान पर स्खलित हो गईं!

आज भी देखिए। गांधीजी के तीस वर्ष के उपदेशों और आदेशों पर चलनेवाले हम तपस्वी किस तरह दिन–दिन नीचे गिरते जा रहे हैं।

इसलिए उपाय एकमात्र है – वृत्तियों को उर्ध्वगामी करना !

कामनाओं को स्थूल वासनाओं के क्षेत्र से ऊपर उठाकर सूक्ष्म भावनाओं की ओर प्रवृत्त कीजिए।

शरीर पर मानस की पूर्ण प्रभुता स्थापित हो – गेहूँ पर गुलाब की !

गेहूँ के बाद गुलाब – बीच में कोई दूसरा टिकाव नहीं, ठहराव नहीं !

गेहूँ की दुनिया खत्म होने जा रही है। वह दुनिया जो आर्थिक और राजनीतिक रूप में हम सब पर छाई है।

जो आर्थिक रूप से रक्त पीती रही, राजनीतिक रूप में रक्त की धारा बहाती रही !

अब वह दुनिया आने वाली है जिसे हम गुलाब की दुनिया कहेंगे। गुलाब की दुनिया –मानस का

संसार – सांस्कृतिक जगत।

अहा, कैसा वह शुभ दिन होगा हम स्थूल शारीरिक आवश्यकताओं की जंजीर तोडकर सूक्ष्म मानस–जगत् का नया लोक बसाएँगे !

जब गेहूँ से हमारा पिण्ड छूट जाएगा और हम गुलाब की दुनिया में स्वछन्द विहार करेंगे।

गुलाब की दुनिया – रंगों की दुनिया, सुगन्धों की दुनिया!

भौंरे नाच रहे, गूँज रहे, फूल सूँघनी फुदक रही, चहक रही! नृत्य, गीत – आनंद, उछाह!

कहीं गंदगी नहीं, कहीं कुरूपता नहीं, आंगन में गुलाब, खेतों में गुलाब, गालों पर गुलाब खिल रहे, आँखों से गुलाब झाँक रहा !

जब सारा मानव–जीवन रंगमय, सुगन्धमय, नृत्यमय, गीतमय बन जायेगा! वह दिन कब आयेगा ?

वह आ रहा है – क्या आप देख नहीं रहे हैं ? कैसी आँखें हैं आपकी ! शायद उन पर गेहूँ का मोटा पर्दा पड़ा हुआ है। पर्दे को हटाइए और देखिए वह अलौकिक स्वर्गिक दृश्य इसी लोक में, अपनी इस मिट्टी की पृथ्वी पर ही!

"शौके दीदार अगर है, तो नजर पैदा कर !"

शब्दार्थ

तृप्त – संतुष्ट

तरजीह – महत्व

समिधा – हवन में जलाने की लकड़ी

उच्छ्वसित – विकसित, खिला हुआ

{्रुधा – भूख

गलीज – गन्दा, मैला

हस्तामलकवत् – हाथ में रखे आँवले की तरह, स्पष्ट

इफरात – बहुतायत

तबाह – नष्ट

अभक्ष्य – अखाद्य, न खाने योग्य

उछाह – उत्साह

दीदार – दर्शन

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मैदान जोते जा रहे हैं, बाग उजाड़े जा रहे हैं, किसके लिए ?

(अ) गेहूँ के लिए (ब) गुलाब के लिए

(स) शान्ति के लिए (द) खुशी के लिए ( )

2. गेहूँ और गुलाब के बीच आवश्यक है –

(अ) विरोध (ब) सन्तुलन

(स) शान्ति　　(द) होड़　　(　)

3. गुलाब की दुनिया प्रतीक है –

(अ) स्वर्ग की　　(ब) धरती की

(स) मानस की　　(द) मस्तिष्क की　　(　)

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मानव को मानव किसने बनाया?
2. मानव शरीर में सबसे नीचे का स्थान क्या है?
3. लेखक के अनुसार आने वाली दुनिया को हम कौनसी दुनिया कहेगें ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. गेहूँ और गुलाब का सम्बन्ध किनसे है ?
2. 'अब गुलाब गेहूँ पर विजय प्राप्त करे' से क्या तात्पर्य है?
3. लेखक के अनुसार राक्षसता क्या है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. गेहूँ और गुलाब की प्रतीकात्मकता स्पष्ट कर लेखक के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए?
2. इन्द्रिय संयमन और वृत्ति उन्नयन से आप क्या समझते हैं?ये क्यों आवश्यक है?
3. 'गेहूँ सिर धुन रहा है खेतों में, गुलाब रो रहा है बगीचों में' से क्या तात्पर्य है?

यात्रा : एक पावन तीर्थ की

–डॉ. देव कोठारी

लेखक–परिचय

डॉ. देव कोठारी का जन्म 27 अक्टूबर, 1941 को गोगुंदा जिला उदयपुर में हुआ। हिन्दी, प्राकृत और इतिहास विषय में स्नातकोत्तर एवं राजस्थानी में विद्या वाचस्पति की उपाधि प्राप्त की। आपकी रूचि प्राचीन साहित्य के हस्तलिखित ग्रंथों के अध्ययन की रही। कई शोध परक आलेख लिखकर प्राचीन तथ्यों को प्रकाश में लाए। नई कहानी की रचना प्रक्रिया एवं शिल्प विधान पर आपका लेखन उल्लेखनीय है। आप साहित्य संस्थान, उदयपुर में निदेशक पद पर रहे एवं राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, बीकानेर के अध्यक्ष भी रहे। महाराणा मेवाड फाउण्डेशन के प्रतिष्ठित महाराणा कुंभा पुरस्कार से आपको सम्मानित किया गया है।

पाठ–परिचय

प्रस्तुत यात्रावृत्त में लेखक ने अण्डमान निकोबार द्वीप समूह की स्वर्णिम स्मृतियों का रेखांकन किया हैं। पोर्ट ब्लेयर का प्राकृतिक सौंदर्य, रॉस द्वीप की ऐतिहासिकता, सेल्यूलर जेल की कहानी में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का चित्रमय वर्णन एवं लेखक की सूक्ष्म दृष्टि का सुन्दर वर्णन इसमें हुआ है। ऐतिहासिक तथ्यों के साथ भावपूर्ण चित्रण अनुपम है। यह यात्रावृत्त भारतीय स्वंतत्रता संग्राम के दृश्य को प्रस्तुत करता है, जहाँ मातृभूमि के लिये स्वाधीनता सेनानियों ने देश रक्षार्थ किस प्रकार संघर्ष किया?

****

बाल्यकाल में मॉ भारती को गुलामी की जंजीरों में जकड़े हुए देखा था। स्वाधीनता संग्राम एवं 15 अगस्त, 1947 को उन जंजीरों से मुक्त होते हुये भारत के स्वर्णिम प्रभात के दर्शन भी किये थे। उन्हीं दिनों वीर सावरकर के स्वातंत्र्य संघर्ष के किस्से आये दिन सुनने को मिलते थे। अण्डमान द्वीप में पोर्ट ब्लेयर स्थित सेल्यूलर जेल में सावरकर तथा अन्य स्वाधीनता सेनानियों को दी जाने वाली यातनाओं की लोमहर्षक धटनाएँ सुन कर दिल दहल उठता था। मन में तब स्वतः स्फूर्त जिज्ञासा उठती थी कि यदि जीवन में कभी अवसर मिला तो स्वतंत्रता सेनानियों के इस पावन तीर्थ सेल्यूलर जेल की माटी का साक्षात वन्दन अवश्य करूंगा तथा यहॉ की माटी से तिलक कर उन स्वाधीनता के पुजारियों के प्रति नमन कर भावभीनी श्रद्धा अवश्य अर्पित करूंगा।

जीवन के सात दशक पार करने तक यह पुनीत अवसर नसीब नहीं हो सका, लेकिन आठवें दशक में प्रवेश करते ही महाराणा प्रताप वरिष्ठ नागरिक संस्थान, उदयपुर के प्रयासों से बचपन में उत्पन्न इच्छा को पूर्ण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तथा अण्डमान–निकोबार केरल व कन्याकुमारी की ग्यारह दिवसीय यात्रा का थामस कूक यात्रा कं. के माध्यम से कार्यक्रम बना। इस यात्रा में कुल 64 सदस्य थे, जिनमें 25 दम्पति 8 एकाकी पुरूष, 5 एकाकी महिलाएँ व एक बालक था। वरिष्ठ नागरिकों का यह दल 1 अप्रेल, 2011

सायं 9.30 बजे टाउन हाल उदयपुर से दो बसों द्वारा अहमदाबाद के लिये रवाना हुआ। बसें 2 अप्रेल को प्रातः 3.00 बजे अहमदाबाद एअरपोर्ट पहुंची और प्रातः 5.50 बजे किंग फिशर वायुयान चैन्नई के लिये उडा। लगभग 2 घंटे 20 मिनट तक आकाश मार्ग की अनुभूतियों का आनन्द लेते हुये प्रातः 8.10 बजे पर चेन्नई एअरपोर्ट पहुंचें। यहॉ एअरपोर्ट के बाहर दो वातानुकूलित बसें तैयार खडी थी। इन बसों से हमें दो होटलों यथा–होटल डी.सी. इन तथा होटल डी.सी. मनोर में ठहराया गया। यहां से ब्रेकफास्ट करके पहले हम चेन्नई के प्रसिद्ध मेरिना बीच पर पहुंचे। यहां हमने हिन्द महासागर की विशालता को देखा। पानी की लहरों का समुद्र के पानी में उतर कर आनन्द लिया, तत्पश्चात चेन्नई म्यूजियम के लिये रवाना हुए तथा चेन्नई म्यूजियम की पुरातात्विक, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक धरोहर का साक्षात्कार कर दक्षिण भारत की भव्यता के दर्शन किये। दोपहर में पुनः अपने–अपने होटल में लौट आये तथा क्रिकेट के वर्ल्डकप के फाइनल मैच को टी वी पर देखा। भारत की जीत का जश्न होटल में बैठकर ही मनाया।

रात्रि विश्राम कर 03 अप्रेल को प्रातः 7.00 बजे चेन्नई एअरपोर्ट के लिये बसों से पुनः रवाना हुए तथा प्रातः 9.30 बजे चेन्नई से पोर्ट ब्लेयर के लिये उडे। चेन्नई से पोर्ट ब्लेयर की 1330 किलोमीटर की हवाई दूरी सम्पन्न कर लगभग 11.30 बजे पोर्ट ब्लेयर स्थित वीर सावरकर एअरपोर्ट पर वायुयान ने दस्तक दी। यहाँ से बसों द्वारा होटल TSG पहुॅचे। अपने–अपने कमरों में विश्राम के पश्चात् दोपहर का भोजन किया तथा भोजन के बाद मन में उमंग, उत्साह तथा जिज्ञासा से सराबोर हो पोर्ट ब्लेयर के भ्रमण के लिये रवाना हुए। मन में यह जानने कि प्रबल उत्कण्ठा थी कि अण्डमान निकोबार को भारत का कालापानी क्यों कहा जाता है?

सबसे पहले वाटर स्पोर्टस काम्पलेक्स (जल कीडा विहार परिसर) पहुंचे जल कीडा की दृष्टि से यह अपने आप में सम्पूर्ण भारत में अद्वितीय हैं समुद्री ज्वार और भाटे के समय यह परिसर पानी से अपने आप लबालब हो जाता है तथा फिर खाली भी हो जाता है। इस परिसर के अन्दर और खुले समुद्र में जल–क्रीडा करने की सुन्दर व्यवस्था है। स्थानीय पर्यटन विभाग जल–क्रीडा कम खर्च पर कराता है। इसके समीप ही स्थित 26 दिसम्बर 2004 को आई सुनामी की स्मृति में स्मारक भी बना हुआ है। इस स्मारक पर क्षण भर मौन धारण कर उन अनाम लोगों के प्रति श्रद्धांजलि भी अर्पित की जो इस सुनामी की भेंट चढ गये थे।

इस जल–क्रीडा परिसर के ठीक सामने रॉस द्वीप है। इस रॉस द्वीप का क्षेत्रफल केवल 0.8 वर्ग किलोमीटर है तथा इसका नामकरण डेनियल रॉस जो मरिन इंजीनियर था, के नाम से किया गया है। यहाँ पर पानी के बोट से दस मिनट में पहुँचा जा सकता है। जब रॉस द्वीप पर हम सब पहुँचे तो हमारा परिचय अनुराधा राव नाम की एक महिला गाइड से कराया गया। यह अधेड उम्र, छरहरे बदन एवं सांवले रंग की महिला स्वभाव से जोशीली एवं फर्राटेदारहिन्दी व अंग्रेजी में बात करने वाली थी। सबसे पहले इस अनुराधा राव ने हमें पार्टब्लेयर तथा रॉस द्वीप का परिचय कराया।

उसने बताया, यह पार्टब्लेयर एवं रॉस द्वीप अण्डमान–निकोबार द्वीप के हिस्से हैं। अण्डमान निकोबार द्वीप समूह का कुल क्षेत्रफल 8249 वर्ग किलोमीटर है, जिनमें कुल 572 छोटे–बडे द्वीप हैं इनमें से केवल 36 द्वीपों में ही आबादी हैं, शेष निर्जन हैं। अण्डमान द्वीप की लम्बाई 467 किलोमीटर और अधिकतम

चौडाई 52 किलोमीटर है। इसी तरह निकोबार द्वीप समूह की लम्बाई 259 किलोमीटर और अधिकतम चौड़ाई 58 किलोमीटर है। अण्डमान एवं निकोबार द्वीपों का सर्वप्रथम सर्वे लेफ्टिनेन्ट आर्चिबाल्ड ब्लेयर तथा लेफ्टिनेन्ट कोल ब्रुक ने सन् 1778–79 में किया था। अण्डमान द्वीप के सबसे बडे द्वीप का नामकरण इसी लेफ्टिनेन्ट आर्चिबाल्ड ब्लैयर के नाम से किया गया है। यह पार्ट ब्लेयर अण्डमान निकोबार द्वीप की राजधानी भी है। यहाँ जाने के लिये पोटर्टब्लेयर से 12 घंटे लगते हैं तथा स्थानीय प्रशासन से स्वीकृति लेनी पड़ती है। गाइड अनुराधा राव ने बताया कि अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह में अब भी जारवा, सेन्टिनिलीज, शोम्पेन, ओंगी, अण्डमानीज निकोबारी तथा केरेन नाम की आदिवासी जातियां निवास करती हैं। पोर्टब्लेयर में हिन्दू, ईसाई मुस्लिम, सिक्ख बौद्ध जैन आदि सभी धर्मों के लोग निवास करते है।

रॉस द्वीप के बारे में अनुराधा ने कहा कि यह द्वीप अंग्रेजी शासन के दौरान अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह की राजधानी था। यहीं पर सभी सरकारी कार्यालय थे। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान यह जापानियों के अधीन भी रहा । महान स्वतंत्रता सेनानी सुभाषचन्द्र बोस ने इसी द्वीप पर सबसे पहले जापानी जरनल से भेंट की थी। जापानियों ने जब यह द्वीप छोड़ा तो उन्होंने इसे तहस–नहस कर दिया।

अब यह रॉस द्वीप खण्डहरों का द्वीप बन कर रह गया है। इस द्वीप पर अंग्रेजी शासनकाल के सभी भवन यथा–सेना बेरेक्स,मुख्य आयुक्त का बंगला, कार्यालय, चर्च बेकरी प्रेस अस्पताल, पानी के टेंक बिजलीघर क्लब कब्रिस्तान जेलर का मकान, स्वीमिंग पुल, बाजार, अंग्रेजी नागरिकों के निवास वाली कई इमारतें जो कभी भव्यता लिये थी, अब खण्डहर के रूप में हैं। अनुराधा ने एक–एक कर उपर्युक्त सभी स्थानों पर ले जाकर हमें उन इमारतों की विशेषताओं का जिक्र किया। जब हम एक के बाद एक इन इमारतों को देख रहे थे तो जगह–जगह हिरनों ने हमारा स्वागत किया। हमारे पास जो कुछ खाने की सामग्री थी, इनके सामने डाली। इनके साथ खडे होकर फोटो खींचे। यह दृश्य हमें आज भी रोमांचित कर देता है। जब इस द्वीप को देखकर वापस बोट में बैठकर रवाना होने लगे तो ताजे–ताजे तोडकर लाये नारियल खरीदे, उनका पानी पीया नारियल की बन रही गिरी को मक्खन की तरह खाने का आनन्द लिया।

रॉस द्वीप से चले तब तक सायंकाल की पाँच बज चुकी थी। सेल्युलर जेल में 5.30 बजे आयोजित ध्वनि और प्रकाश का कार्यक्रम देखना था। सभी बोट से पोर्ट ब्लेयर आये। पास की ही पहाडी पर सेल्युलर जेल थी, बसों से वहाँ पहुँचे। थामस कुक के प्रतिनिधि ने टिकट लेकर हमें निश्चित स्थान पर लगी कुर्सियों पर बैठाया।

मन में सेल्यूलर जेल की कहानी व स्वाधीनता सेनानियों पर हुए अत्याचारों तथा शहीदों की शहादत आदि के बारे में जानने की तीव्र लालसा थी। समय पर कार्यक्रम शुरू हुआ। इस कार्यक्रम के दौरान जो कुछ सुना और देखा वह रोंगटे खड़े कर देने वाला था। इन स्वाधीनता सेनानियों की दृढता राष्ट्रभक्ति एवं गुलामी की बेडियों को तोड फैंकने की जो लगन व निष्ठा उनमें कूट–कूट कर भरी थी। उसे सुनकर देखकर गला भर आया। इस जेल की एक–एक कोटड़ी तथा अत्याचार स्थलों को आँखों से प्रत्यक्ष देखने की इच्छा और तीव्र हो उठी लेकिन इस जेल के कपाट बन्द होने को थे। कार्यक्रम समाप्त होते ही यहाँ से निकलना पडा।

यात्रा के दूसरे दिन पार्ट ब्लेयर शहर के भ्रमण की योजना थी। नेवल मेरिन म्यूजियम (समुद्रिका)

भी देखना था किन्तु इस कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन करना स्थानीय कारणें से आवश्यक हो गया। नाश्ते के बाद फिर से बस यात्रा। होटल से सीधे चाथम सॉ मिल पहुँचे। यह समुद्री किनारे पर स्थित एवं जंगल से जुड़ी एशिया की सबसे बडी सॉ मिल है। इस मिल में मूल्यवान लकड़ी से लगाकर साधारण लकड़ी की कटाई आधुनिक मशीनों से होती है। बडे–बडे लकड़ी के लट्ठों की मशीनों से कटाई देखने लायक है। कटी हुई विभिन्न आकार प्रकार एवं लम्बाई–चौड़ाई की लकड़ी रखने के बडे–बडे गोदाम बने हुये हैं। यहाँ एक छोटा सा म्यूजियम भी है। इस म्यूजियम में लकड़ी से बने हुये विभिन्न उपकरण, मूर्तियाँ, आभूषण, दैनिक उपयोग में काम आने वाली आकर्षक वस्तुएँ देखने लायक थी। चित्रों के माध्यम से भी विभिन्न प्रकार की जंगली लकड़ी एवं उनके वृक्षों के स्वरूप आदि को बताया गया था। यहाँ से लकड़ी मकान निर्माण हेतु पूरे अण्डमान द्वीप एवं भारत के विभिन्न प्रान्तों में जाती है। सुनामी के दौरान इस मिल में लगभग 15 से 20 फीट तक पानी भर गया था। बहुत नुकसान हुआ।

चाथम सॉ मिल को देखने के बाद बोट में बैठकर वाईपर द्वीप के लिये चले। इस द्वीप का नामकरण वाईपर सर्वे जहाज के नाम से किया गया है, जो यहाँ पर डूब गया था। रास्ते में समुद्र में चलते हुए दूर से कोरल द्वीप का मनोरम दृश्य भी देखा। इस द्वीप का चित्र भारत सरकार के 20 रूपये के नोट पर भी अंकित है। यह द्वीप रॉस द्वीप जाते समय भी देखा जा सकता है। वाईपर द्वीप में सबसे पहले सन् 1789 में कैदियों को रखने के लिये चेनग्यांग नाम की जेल बनी, जो सेल्यूलर जेल बनने के बाद हटा दी गई। इस द्वीप पर ऐतिहासिक महत्त्व का फांसी घर एक ऊंची पहाडी पर स्थित है। अब यह फाँसी घर जीर्ण शीर्ण अवस्था में है तथा इसकी दीवारों पर वृक्ष व घास फूस उग आई है। इस फाँसी घर में पठान शेरअली को 30 मार्च, 1872 को फांसी पर लटकाया गया था क्योंकि उसने वाईसराय लार्ड मेयो का चाकू से गोद कर 8 फरवरी, 1872ई. को होपटाऊन जेट्टी पर खून कर दिया था। हम सभी ने इस साहसी व क्रान्तिकारी शहीद पठान शेरअली को दो मिनट की श्रद्धांजलि अर्पित कर यहां से पोर्ट ब्लेयर के लिये रवाना हुए।

दोपहर का भोजन पहले ही कर लिया था। अपरान्ह का समय होने आ गया था। थामस कूक के प्रतिनिधि ने चिड़ियाँ टापू चलने का सुझाया। सबको यह विचार पसन्द आया। फिर से बसों में सवार होकर चिड़ियाँ टापू के लिये चले यह टापू पोर्ट ब्लेयर से कोई 30 किमी दूर घने जंगल में स्थित हैं। यहाँ चिड़ियाँ तो देखने को नहीं मिली लेकिन इस द्वीप का अनूठा नैसर्गिक सौन्दर्य देखकर मन प्रसन्न हो गया। साथ ही सुनामी का भयावह कहर भी यहाँ दिखाई दे रहा था। अधिकांश साथियों ने समुद्र में उतर कर समुद्र की लहरों का आनन्द लिया। सूर्यास्त का समय हो गया था। इस टापू पर सूर्यास्त की अलौकिक छटा भी दर्शनीय होती है। इस छटा को बहुतों ने अपने कैमरों में कैद करते हुये पुनः पार्ट ब्लेयर के लिये रवाना हुये। कुछ समय के लिये रास्ते में चाय पीने के लिये दोनों बसें रूकी। पोर्ट ब्लेयर पहुँचते–पहुँचते अंधेरा हो गया था। बसें सीधी होटल पहुंची भोजन के बाद सब निद्रादेवी की गोद में चले गये।

यात्रा का अगला दिन महात्मा गाँधी राष्ट्रीय पार्क वन्डूर के लिये नियत था। यह एक विशाल समुद्री क्रिक पार्क है जो 281.5 वर्ग किलोमीटर और 15 छोटे–छोटे द्वीपों में फैला हुआ है। प्राकृतिक सुंदरता एवं जंगली जीव जन्तुओं से यह द्वीप भरपूर है। इस द्वीप से जुडे जोलीब्वाय द्वीप पर हमें पहुँचना था। पोर्ट ब्लेयर से यह द्वीप 24 किलोमीटर दूर है। बसों द्वारा पोर्ट ब्लेयर से पहले मण्डूर द्वीप पहुंचे। यहाँ से बोट में

बैठकर जोलीब्वाय जाना था। रास्ता लम्बा और गहरा समुद्र होने से हम सबको बोट में बैठने से पहले सुरक्षा जॉकेट पहनाये गये।

बोट रवाना हुए। चारों और गहरा समुद्र! काँच के सदृश स्वच्छ एवं नीलिमा लिये पानी। पानी में कहीं भी मछली तक नजर नहीं आती थी। पाँच छः किलोमीटर आगे बढने पर समुद्री गलियारा आया। दोनों ओर टापू। दोनों टापूओं के बीच में 200 से 250 फीट की दूरी। दोनों ओर के टापू हरियाली से भरपूर। टापूओं का किनारा समुद्री लहरों से कटा हुआ। यह कटी हुई भूमि विभिन्न आकर्षक डिजाइनों से मनमोहक। इन टापूओं के घने जंगल में ऊँचे–ऊँचे गगन चुम्बी पेड, लेकिन कहीं पर कोई बन्दर या जंगली जानवर दिखाई नहीं दिया। पक्षी भी नहीं दिखे, न पक्षियों का कलरव ही सुनाई दिया।

कोई दो घंटे बोट से चलने के बाद 'जोलीब्याय' टापू पर पहुॅचे सुनसान और हरियाली से भरपूर टापू। समुद्र बहुत कम गहरा। सब ने यहाँ बैठकर पहले समुद्री लहरों का आनन्द लिया। जब रहा नहीं गया तो कुछ साथी व महिलायें साहस कर समुद्र के पानी में पैदल आगे बढे। कुछ साथी समुद्र में तैरने लगे। सुरक्षा जॉकेट पहन कर कुछ बहुत दूर भी चले गये। फोटोग्राफी का आनन्द भी लिया। इस द्वीप पर एक सुरक्षा कर्मी भी नियत था। यह हमें समय–समय पर सतर्क रहने के लिये कहता रहता। यहाँ गन्दगी नहीं फैलाने और नाश्ता करने के बाद खाली प्लास्टिक की थैलियाँ, डिब्बे आदि नहीं छोड़कर जाने की चेतावनी लगातार देता रहता। यहाँ से समुद्री जीव–जन्तुओं के जो अवशेष सीपी पाषाण के आकर्षक नमूने बिखरे पड़े हुये हैं, उन्हें यहाँ से एकत्रित कर नहीं ले जाने के लिये भी सुरक्षाकर्मी सतर्क कर रहा था और कानूनी पाबन्दी की बात बता रहा था। दोपहर में उमड़–धुमड़ कर बादलों ने द्वीप पर डेरा डाला। वर्षा भी आई झाडियों में छिप कर वर्षा का यह लुत्फ भी उठाया। दोपहर बाद वापस रवाना हुए। बोट में लगे विशेष काँच के माध्यम से समुद्र के अन्दर के जीवों की चहल कदमी का भी अवलोकन किया।

बोट से पुनः मण्डूर द्वीप पर पहुॅचे। उतर कर मण्डूर द्वीप के दूसरे छोर के समुद्री किनारे पर बैठकर साथ में लाये डिब्बा बन्द भोजन सबने मिलकर किया। यहाँ पर स्थानीय निवासियों ने नारियल की दुकाने लगा रखी थी। पीले और हरे रंग के नारियल। पसन्द के अनुसार खरीद कर नारियल से तृप्त होने का प्रयास भी किया। वर्षा ने यहाँ भी दस्तक दी। भीगने का आनन्द भी लिया। अन्त में, भोजन के पश्चात् पुनः पोर्ट ब्लेयर के लिये बसों से रवाना हुए। बसें सीधी पोर्ट ब्लेयर के मुख्य बाजार में स्थित सागरिका के पास रूकी। यहाँ पर प्रायः सभी ने कुछ न कुछ खरीददारी अवश्य की। किसी ने समुद्री मोती खरीदे तो किसी ने मोती व मूंगा जडित आभूषण खरीदे। कुछ ने समुद्री जन्तुओं के आकर्षक अवशेष लिये तो कुछ ने यहाँ की लकडी से बने सजावट तथा रसोई में काम आने वाले उपकरण खरीदे।

यात्रा के अंतिम दिवस प्रातः हमेशा से जल्दी उठना पड़ा। नित्य कर्म से निवृत्त हो होटल TSG से चेक आउट करने के लिये सामान को पैक किया। मन में नैसर्गिक सौन्दर्य से परिपूर्ण ऐतिहासिक किन्तु काला पानी के नाम से ख्यात इस अण्डमान द्वीप से विदाई लेने की उदासी व्याप्त थी तो दूसरी ओर एअरपोर्ट पहुँचने से पहले शहीदों के राष्ट्रीय स्मारक सेल्यूलर जेल पहुँच कर उसे निहारने की उत्सुकता और उमंग से मन सराबोर था।

अभी प्रातः 7.30 बजे थे, पहुॅचना 9.00 बजे था। इस बीच ब्रेकफास्ट भी लेना था, लेकिन एक–एक

पल एक–एक घंटे जैसा प्रतीत हो रहा था। नाश्ता तो करना ही था क्योंकि पता नहीं दिन में भोजन कब नसीब हो?लकिन आज इस नाश्ते में हमेशा की तरह स्वाद नहीं था। मन में सेल्यूलर जेल देखने के जो सपने संजो रखे थे, वे अभी कुछ क्षणों बाद पूरे होने वाले थे, इसलिये ब्रेक फास्ट गौण हो गया था। जैसे तैसे नाश्ता कर बसों में सामान साथ में लेकर सेल्यूलर जेल ठीक 9.00 बजे पहुंचे। थामस कुक के प्रतिनिधि ने हमारे लिये टिकट खरीदे, गाइड किया और हमारे दल ने सेल्यूलर जेल में प्रवेश किया। हमें जेल होकर भी जेल नहीं लग रही थी। हमारे लिये यह स्वतंत्रता सेनानियों का परम पावन मंदिर था। इस मंदिर में घुसते ही यहाँ की चन्दन सी माटी का वन्दन कर उसे माथे पर लगाया।

गाइड ने हमें बताना शुरू किया। यह सेल्यूलर जेल इण्डियन बेस्टिल के नाम से दुनिया भर में ख्याति प्राप्त है। यह जेल पोर्ट ब्लेयर नगर के अटलांटा पोइंट की ऊँचाई पर स्थित है जो इस नगर के उत्तर–पूर्व दिशा में है। इस जेल के निर्माण की सिफारिश जेल निर्माण कमेटी के सदस्य सर सी जे लायल एवं सर ए एस लैथ ब्रिज ने सन् 1890 में की तथा इसके निर्माण का आदेश पोर्ट ब्लेयर के तत्कालीन सुपरिन्टेडेन्ट कर्नल एन एम टी हार्सफोर्ड ने प्रसारित किये। इस जेल का निर्माण सन् 1896 से 1906 ई. के मध्य हुआ तथा इस के निर्माण में कुल 5,17,352/– रूपये व्यय हुए। इस जेल की सात भुजायें (कतारें) हैं यह सातों ही कतारें मध्य भाग में एक टावर से जुडी हैं। इस मध्य भाग के टावर से जेल की इन सातों भुजाओं पर एक साथ नजर रखी जा सकती है। प्रत्येक भुजा तीन मंजिला है जिसमें 696 कोटड़ियां (कमरे) हैं। वर्तमान में इस जेल में तीन भुजायें (कमरे) तथा कुल 291 कोटड़ियाँ ही विद्यमान है। शेष चार भुजायें एवं 405 कोटड़ियाँ भूकम्प तथा द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापानियों द्वारा (1942–45 के मध्य) की गई बम वर्षा के कारण नष्ट हो गई। इस स्थान पर अब सरकारी अस्पताल है। इन कोटडियों की बनावट अपने आप में एकान्त जेल सदृश है। एकान्त जेल सदृश्य होने के कारण इस सम्पूर्ण जेल का नामकरण सेल्यूलर जेल किया गया है। प्रत्येक कोटड़ी 13.5 फीट लम्बी और 7 फीट चौड़ी है। कोटड़ी में काफी ऊंचाई पर 3X1 का केवल एक रोशनदान दिया गया है। हवा और रोशनी के लिये एकमात्र यही रोशनदान है। कोटड़ी के बाहर क्या हो रहा है कुछ भी पता नहीं चलता है। कोटड़ी का दरवाजा लौह का है जो तीन फीट की राड के साथ बाहर से बन्द होता है तथा ताला भी बाहर ही लगता है। सभी कोटड़ियाँ लम्बी कतार में है, कोटड़ियों के बाहर चार फीट चौडा दालान है। दालान में रात की रोशनी हेतु लालटेन टंगे हुए हैं। जेल की एक कतार तीन मंजिल होने से हर मंजिल में उस समय एक वार्डन रहता था। इस प्रकार सातों भुजाओं में 21 वार्डन गश्त लगाते थे।

इन कोटड़ियों में लघु या दीर्घशंका (शौच) के निवारण के लिये कोई स्थान नहीं था। रात्रि में लघुशंका के लिये मिट्टी का एक बर्तन दिया जाता था। उसमें एक बार का मूत्र समा सके यह उतना ही बडा होता था, दो तीन बार करना पडे तो वहीं कोटड़ी में करना पडता था। रात को पेट गडबड हो जावे फ्रेश होने की इच्छा हो या दस्तें लग रही हैं तो रात को इसके लिये कोटड़ी से बाहर आने की कोई सुविधा उपलब्ध नहीं होती थी। यह कोटड़ी ही इन स्वतंत्रता सेनानियों का शयन कक्ष था, यही ड्राईग रूम और यही शौचालय। रात को लघुशंका या शौच हो जाने पर कोटडी दुर्गन्ध से भर उठती थी। शौच आने की स्थिति में वार्डन भी बहुत सख्ती से पेश आते थे। बिना उनकी स्वीकृति से कोई कोटडी से बाहर नहीं आ सकता था। बीमार होने पर सख्ती से जाँच होती थी। खूंखार जेलर मिस्टर बेरी के पास उपस्थित होना होता था। बेरी की

स्वीकृति के बाद ही डाक्टरी जाँच हो सकती थी।

स्वतंत्रता सेनानियों को प्रतिदिन नारियल या सरसों का तेल निकालने का कोटा अनिवार्य रूप से पूरा करना होता था,जो स्वाधीनता सेनानी ऐसा नहीं कर पाते थे, उन्हें एक स्टेण्ड से बांध कर बेरहमी के साथ पीटा जाता था। तेल निकालने की घाणी में बेल की तरह जुतना होता था और कोल्हू को खींचना होता था। बीमार क्रान्तिकारी को भी इससे छूट नहीं थी। तेल निकालने के अलावा इन क्रान्तिकारियों को नारियल के छिलके को कूट–कूट कर साफ करना होता था।

गाइड ने बताया कि इन क्रान्तिकारियों को जो भोजन दिया जाता था, वह स्वादहीन होता था, रोटियां कच्ची अथवा जली हुई होती थी। दाल या सब्जी नीरस घास के तिनकों कीडों से युक्त तथा कम नमक वाली होती थी। लेकिन भूख मिटाने के लिये इसे खाना होता था। इस भोजन से क्रान्तिकारी अक्सर बीमार हो जाते थे।

इन क्रान्तिकारियों को सायंकाल 5.00 बजे से ही कोटड़ियों में बन्द कर दिया जाता था और प्रातः 6.00 बजे तक बन्द रहना पडता था। इन क्रान्तिकारियों को समाचार पत्र पढने की सख्त मनाही थी। अपने घर पर वर्ष में एक बार ही पत्र लिख सकते थें। जो पत्र आते उनकी भी कडाई से जांच के बाद ही दिया जाता था। कभी कभी रोक भी दिया जाता था। कभी–कभी क्रान्तिकारी भूख हडताल कर देते थे और जिन क्रान्तिकारियों ने जेल के जुल्म का मुकाबला करने की कोशिश की तो उन्हें जान भी गँवानी पडती थी। इन्दुभूषण राय का आत्म–बलिदान इसका उदाहरण है। जेल का अनुशासन बहुत कड़ा था।

जेल के गाईड ने इस प्रकार की कई जानकारियाँ दी। उसने सेल्यूलर जेल के चप्पे–चप्पे का अवलोकन कराने से पूर्व इस जेल के मध्य में स्थित बलिदान वेदी स्तंभ तथा 9 अगस्त 2004 से स्थापित स्वातंत्र्य ज्योति के दर्शन कराये। तत्पश्चात उसने इस जेल परिसर में स्थित विशिष्ट स्थान विशेषकर फांसी घर तेल कारखाना सजा देने का स्टेण्ड एवं सजा देने के प्रकार स्वतंत्रता सेनानियों की चित्र दीर्घा, नेताजी दीर्घा, आर्टी फैक्ट दीर्घा, अण्डमान चित्र दीर्घा, मध्य का टावर, वीर सावरकर की कोटड़ी आदि को एक–एक कर के देखा। फाँसी घर सेल्यूलर जेल के ग्राउण्ड फ्लोर पर बना हुआ था। यह फांसी घर अंग्रजों की क्रूरता का आज भी साक्षी है। इसके अन्दर जाकर देखा तो रोंगटे खडे हो गये। किस प्रकार क्रान्तिकारी को ऊपर खड़ाकर नीचे से पाटिया खिसका दिया जाता और शव घड़ाम से अण्डर ग्राउण्ड में जा कर गिर जाता। इस दृश्य को देखकर ऐसे क्रान्तिकारियों के प्रति हमारे सिर श्रद्धा से स्वतः ही झुक गये। ग्राउण्ड फ्लोर पर ही बना तेल निकालने का कारखाना, तेल की घाणी भी स्थित है। क्रान्तिकारियों को इस घाणी के कोल्हू से जोड़ कर उनसे कोल्हू चलवाया जाता और पास की कुर्सी पर बैठा व्यक्ति थोड़ी सी भी गति धीमी करने पर किस प्रकार से कोडे मारता, यह देख कर हमारे रोंगटे खडे हो गये। इसी प्रकार सजा देने के स्टेण्ड व सजा देने के प्रकारों को भी देखा, जिस क्रान्तिकारी को सजा देनी होती उसे इस स्टेण्ड पर उल्टा बाँध दिया जाता तथा एक तगडा व्यक्ति लगातार उसकी पीठ व पैरों पर कोड़े से वार करता और हर कोड़े पर क्रान्तिकारी जोर–जोर से वन्देमातरम् का उद्घोष तब तक करता रहता जब तक वह बेहोश नहीं हो जाता। सजा देने के ऐसे और भी कई तरीके चित्र बना कर यहाँ बताये गये हैं।

स्वतंत्रता सेनानियों की चित्र दीर्घा में उन अधिकांश क्रान्तिकारियों के चित्र जो उपलब्ध हो सके

उनके चित्र नाम व परिचय के साथ लगाये गये हैं कई ऐसे क्रान्तिकारी भी हैं जो इस जेल में अपना जीवन बलिदान कर चुके हैं जिनके नाम, पता व फोटो तक इस चित्र दीर्घा में उपलब्ध नहीं हो सके हैं क्योंकि रेकार्ड में उनका नाम तक दर्ज नहीं है। इस चित्र दीर्घा में इन क्रान्तिकारियों को उस समय पहनाई जाने वाली ड्रेस, उनको लगाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की बेडियाँ, उनके खाने के बर्तन आदि को भी प्रस्तुत किया गया है।

सेल्यूलर जेल के क्रूर खूंखार एवं अत्याचारी जेलर डेविड बेरी के कार्यालय में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस से संबंधित चित्र दीर्घा को रूपापित किया गया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान और अण्डमान निकोबार द्वीप पर जापानीसेना के अधिकार के समय 29,30 एवं 31 दिसम्बर, 1943 को तीन दिवसीय दौरे पर नेताजी सुषाषचन्द्र बोस अण्डमान निकोबार द्वीप पर आये थे। इस समय उन्होंने सेल्यूलर जेल, रॉस द्वीप, पोर्ट ब्लेयर आदि द्वीपों का दौरा किया था तथा 30 दिसम्बर 1943 ई को पोर्ट ब्लेयर के जिमखाना मैदान में आजाद हिन्द सरकार का झण्डा फहराते हुये अपने भाषण में अण्डमान को शहीद द्वीप तथा निकोबार का स्वराज्य द्वीप नामकरण किया था। नेताजी के इस स्वर्णिम प्रवास तथा उनके सम्पूर्ण जीवन की चित्र विथी का पूर्ण विवरण के साथ इस दीर्घा में प्रभावी तरीके से सजाया गया है।

सेल्यूलर जेल के ग्राउण्ड फ्लोर के कुछ अन्य सामान्य स्थानों का परिचय कराते हुये गाइड महोदय हमारे दल को सेल्यूलर जेल को उस कोटडी में ले गये, जहाँ पर विनायक दामोदर सावरकर को बन्दी बना कर रखा गया था। इस कोटडी में रहते हुये विनायक दामोदर सावरकर को एक वर्ष तक यह पता नहीं चल सका कि उनका बडा भाई गणेश दामोदर सावरकर भी इसी जेल में कैद है। इस कोटडी में वीर सावरकर 4 जुलाई 1911 से 22 जनवरी, 1921 तक बन्द रहे। यह कोटडी सेल्यूलर जेल की तीसरी मंजिल के अन्त में वाटर स्पोर्टस परिसर की ओर स्थित भुजा (कतार) पर स्थित है। वीर सावरकर से ब्रिटिश सरकार बहुत भयभीत थी और डर था कि कहीं इस कोटडी से सावरकर बाहर नहीं निकल जाये, इस कारण इस कोटड़ी के बाहर एक और कोटड़ी बनाकर डबल लोक में उन्हें रखा गया था। मूल कोटडी में दरवाजे के ठीक सामने वीर सावरकर का चित्र टंगा हुआ था। इस कोटडी को देखने की बचपन से लालसा थी वह आज पूरी हुई बहुत देर तक इस कोटडी को निहारता रहा और सोचता रहा कि जिस कोटडी में वीर सावरकर बन्दी थे, उसी कोटड़ी में आज मैं भी हूँ। यह सोचते हुये इस कोटड़ी की दीवारों को चूमता रहा तथा सावरकरजी के चित्र के नीचे खडे होकर फोटो खींचवाया ताकि इस फोटो के साथ इस कोटड़ी को भविष्य में भी निहारता रह सकूँ। इच्छा थी इस कोटडी में घंटों बैठा रहूँ किन्तु समय की सीमा थी, एअरपोर्ट पहुँचना था। अन्य साथी आगे चले गये थे। मुझे भी विवश हो उनके पीछे होना पड़ा। यहाँ से जेल के मध्य स्थित टावर में ले जाया गया, जहाँ से सम्पूर्ण जेल पर कैसे नियंत्रण रखा जाता था वह दृश्य बताया। इस टावर से रॉस द्वीप स्पष्ट दिखाई देता था। यहाँ लगे शिलापट्ट पर उन क्रान्तिकारियों के नाम भी उत्कीर्ण थे, जिन्होंने यहाँ रहकर यातनाएं सही थी। ऐसी सेल्यूलर जेल को 11 फरवरी 1979 ई को तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने राष्ट्रीय स्मारक घोषित कर भारत भू को समर्पित किया ताकि इस प्रेरणा स्थल एवं शहीदों के मंदिर को चिर स्मृतियों में संजोकर रख सके।

समय जवाब दे रहा था, जल्दी जल्दी नीचे उतरे। जेल परिसर से बाहर आये। बाहर

सावरकर पार्क में सावरकरजी के साथ उन 6 क्रान्तिकारियों की आदमकद मूर्तियां स्थापित की गई थी जिन्होंने इस जेल में अपनी अंतिम सांसें ली थी। ये क्रान्तिकारी शहीद थे–इन्दू भूषण रे, बाबा भानसिंह, मोहित मोइत्रा, रामरक्श, महावीरसिंह और मोहनकिशाोर नामादास। इन शहीदों को नमन कर पुनः बस में सवार होकर वीर सावरकर एअरपोर्ट पहुंचें। लगभग 11.55 पर वायुयान चेन्नई के लिये उडा और ठीक दो बजे चेन्नई एअरपोर्ट पर उतरे। इस तरह अण्डमान द्वीप की यह चिरस्मरणीय एवं अद्वितीय यात्रा कई संस्मरणों को मन में संजोये हुए सम्पन्न हुई।

इस अद्वितीय यात्रा में यह अनुमान हुआ कि पोर्ट ब्लेयर में लघु भारत के दर्शन होते हैं। हिन्दी यहाँ पर घड़ल्ले से बोली जाती है तथा यहाँ के निवासियों में आज भी वीर सावरकर तथा नेताजी सुभाष बोस के प्रति पर्याप्त आदर भाव है। सेल्यूलर जेल, रॉस द्वीप, वाईपर द्वीप आदि को स्वाधीनता मंदिर के रूप में श्रद्धा के साथ स्मरण करते हैं। ऐसा आत्मीय मंदिर काला पानी कैसे हो सकता है?मैंने सोचा कि इसे काला पानी कहे भी क्यो?जिस धरती पर हमारे स्वाधीनता सेनानियों ने माँ भारती को दासता से मुक्त कराने के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया वह भूमि तो पावन पुष्प चढाने के लिये है। इस धरती की वन्दना करने की बार–बार इच्छा रखते हुये पुनः नमन किया।

शब्दार्थ

धरोहर – विरासत	नैसर्गिक – प्राकृतिक
भयावह – डरावना	पाषाण – पत्थर
निहारना – देखना	ख्याति – प्रसिद्धि
क्रूरता – दुष्टता	सर्वस्व – सबकुछ

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. इण्डियन बेस्टिल के नाम से प्रसिद्ध है–

   (क) रॉस द्वीप (ख) सेल्यूलर जेल

   (ग) पोर्ट ब्लेयर (घ) वाईपर द्वीप

2. सेल्यूलर जेल में किस स्वतंत्रता सेनानी ने यातनाएँ सही?

   (क) वीर सावरकर (ख) भगत सिंह

   (ग) महात्मा गांधी (घ) गोपाल कृष्ण गोखले

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अण्डमान निकोबार द्वीप समूह का क्षेत्रफल बताइये?

2. कौनसा द्वीप खण्डहरों का द्वीप बनकर रह गया है?

3. किस द्वीप का चित्र भारत सरकार के बीस रूपये के नोट पर अंकित किया गया है?

4. सेल्यूलर जेल की कोटड़ियों की बनावट कैसी है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. रॉस द्वीप के बारे में गाइड ने क्या बताया?

2. चॉथम सॉ मिल की क्या विशेषताएं है?

3. पठान शेर अली को फाँसी क्यों दी गई ?

4. सेल्यूलर जेल को लेखक ने पावन मंदिर क्यों कहा है?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. सेल्यूलर जेल में स्वतंत्रता सेनानियों पर किए गऐ अत्याचारों का वर्णन अपने शब्दों में कीजिये।

2. रॉस द्वीप और वाईपर द्वीप की ऐतिहासिकता का संक्षेप में वर्णन कीजिए।